

प्रकाशक
खज़ानचीराम जैन, अध्यक्ष,
मेहरचंद्र लक्ष्मणदास,
दरियागंज, दिल्ली ।

१९५३

मुद्रक
नरेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस,
२०, मॉडल वस्ती,
दिल्ली ।

दो शब्द

तुलसीदास जी को कौन ऐसा हिन्दू है जो नहीं जानता। तुलसीदास अपने काल के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कवि थे। हिन्दी-साहित्य में जो स्थान इस कवि को प्राप्त है वह अन्य किसी को नहीं। ई तो वैसे सूर भी उसी श्रेणी के, किन्तु तुलसीदास जी रामचरित-मानस के कारण घर-घर में प्रकाशमान हो रहे हैं। हिन्दी-संसार में उनका स्थान सर्वोच्च माना जाता है। क्या सूत्रा, क्या पुरुष और क्या याज्ञिक—सब की जड़ पर तुलसीदास जी का नाम स्थित है। इनकी कविता में जो भाषा-चमत्कार है वह अन्यत्र नही मिलता। इनकी भाषा का सरसता अनुपमेय है। भक्ति-प्रधान होने के कारण इनका काव्य प्रत्येक हिन्दू का घर की सम्पत्ति बन गया है। कोई ही ऐसा घराना होगा जहाँ तुलसीरामायण न मिले। कविता इनकी समान प्रवाह से आदि से अन्त तक चलती है। समस्त रचना को पढ़िए अथवा किसी एक अंश को, आपको सर्वत्र पूर्ण रस मिलेगा। तुलसीदास की कविता में आत्मा की स्वच्छ प्रवाह है। कविता में भाव और भाषा दोनों साथ-साथ चलते हैं। उनके गीतों में संसार का प्रमोद खिल रहा है। तुलसीदास जी वस्तुतः हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य थे। उन्होंने लगभग बीस पुस्तकें लिखी हैं किन्तु रामचरित-मानस को सर्वोपरि शासन उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका, बरवै रामायण भी बहुत प्रसिद्ध हैं। हमने इस पुस्तक में उपरोक्त रचनाओं में से यद्ये परिधम से कुछ उपयोगी कवितांश छुट्ट कर संग्रह किये हैं जिनसे धर्म तथा नीति की ऊँची-नीची भूमियाँ

तो ललित होती ही हैं, कवि की कवित्वशक्ति का भी पूरा-पूरा परिचय प्राप्त होता है। हमारा विश्वास है कि यह संग्रह कवि का अच्छा प्रतिनिधित्व कर रहा है और विद्यार्थी इससे यथेष्ट लाभ ले सकेंगे। हमारा यह भी विश्वास है कि इसमें संगृहीत सभी कविताएँ सर्वथा रसपूर्ण और मार्मिक हैं तथा छात्रों के लिए अधिकाधिक उपयोगी और साहित्यावगाहन की रुचि उत्पन्न करने वाली हैं। बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अन्त में कठिन शब्दों और वाक्यांशों का सरल अर्थ और व्याख्यात्मक स्पष्टीकरण भी कर दिया गया है जिससे छात्र इस तुलसी-साहित्य का रसास्वादन करने में क्लिष्टता का अनुभव न कर सकें।

लक्ष्मीचन्द्र खुराणा

तुलसी-रत्नावली

वरवै रामायण

केस-मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥१॥

सम सुवर्न सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय-अंग, सखि ! कोमल, कनक कठोर ॥२॥

सियमुख सरदकमल जिमि किमि कहि जाइ ।
निसि मलीन वह, निसि-दिन यह विगसाइ ॥३॥

चंपक-हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ ।
जानि परै सिय-हियरे जव कुँभिलाइ ॥४॥

सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत ।
हार वेलि पहिरावौ चंपक होत ॥५॥

साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव ।
राम नीतिरत, काम कहा यह पाव ? ॥६॥

कारूप सम तुलसी रामरूप ।
को कवि समसरि करै परै भवकूप ॥७॥

चढ़त दसा यह उत्तरत जात निदान ।
कहाँ न फवहँ करकस भौह कमान ॥८॥

तुलसी-रत्नावली

नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन ।
निरखि निसाकर-नृप-मुख भये मलीन ॥६॥

कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अँदेस ।
तमकि ताहि ए तोरिहि कहव महेस ॥१०॥

नृप निरास भये निरखत नगर उदास ।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास ॥११॥

का घूँघट मुख मूँढहु नबला नारि ?
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥१२॥

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन ।
सिय रघुवर के भये उनीदे नैन ॥१३॥

कोउ कह नरनारायन, हरिहर कोउ ।
कोउ कह विहरत वन मधु मनसिज दोउ ॥१४॥

तुलसी जनि पग धरहु गंग महँ साँच ।
निगानाँग करि नितहि नचाइहि नाच ॥१५॥

कमल फटकित सजनी, कोमल पाइ ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ ॥१६॥

द्वै भुज कर हरि रघुवर सुंदर वेष ।
एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष ॥१७॥

वेद-नाम कहि, अँगुरिन खंडि अकास ।
पठयो सूपनखाहि लखन के पास ॥१८॥

जटा मुकुट कर सर धनु, सग मरीच ।
चितवनि वसति फनखियनु अँखियनु बीच ॥१९॥

कनकसलाक, कला ससि, दीपसिखाउ ।
 तारा सिय कहें लछ्मिन मोहिं वताउ ॥२०॥
 सीय-वरन सम केतकि अति हिय हारि ।
 किहेसि भँवर कर हरवा हृदय विदारि ॥२१॥
 म्याम गौर दोउ मूरति लछ्मन राम ।
 इनतेँ भइ सित कीरति अति अभिराम ॥२२॥
 कुजन-पाल गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ ।
 कहहु कृपानिधि राउर कस गुनगाथ ॥२३॥
 विरह-आगि उर ऊपर जव अधिकाइ ।
 ए अँखियों दोउ वैरिनि देहिँ बुझाइ ॥२४॥
 डहकु न है उजियरिया निसि नहिँ घाम ।
 जगत जरत अस लागु मोहिँ विनु राम ॥२५॥
 अब जीवन कै है कपि आस न कोइ ।
 कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ ॥२६॥
 सरद चोदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि ।
 विधुहिँ जोरि कर विनवाति कुलगुरु जानि ॥२७॥
 विविध बाहिनी विलसति सहित अनंत ।
 जलधि सरिस को कहें राम भगवंत ॥२८॥
 तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास ।
 सब ते अधिक राम जपु तुलसीदास ॥२९॥
 जान आदि-कवि तुलसी नाम-प्रभाउ ।
 उलटा जपत कोल ते भये ऋषिराउ ॥३०॥

तुलसी-रत्नावली

कलसजोनि जिय जानेउ नाम-प्रतापु ।
कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जापु ॥३१॥

केहि गिनती महँ ? गिनती जस वनघास ।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥३२॥

एकहि एक सिखावत जपत न आप ।
तुलसी रामप्रेम कर वाधक पाप ॥३३॥

मरत कहत सब सब कहँ 'सुमिरहु राम' ।
तुलसी अब नहिँ जपत समुक्ति परिनाम ॥३४॥

नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु ।
जनम जनम रघुनदन तुलसिहिँ देहु ॥३५॥

(तुलसी के चार दल, द्वितीय पुस्तक से)

प्रेम की अनन्यता

दोहा

एक भरोसो एक बल एक आस विस्वास ।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥१॥
जौं घन वरपै समय सिर जौं भरि जनम उदास ।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ॥२॥
चातक तुलमी के मते स्वातिहुँ पिऐ न पानि ।
प्रेम वृषा वाढति भली घटें घटैगी आनि ॥३॥
रटत रटत रसना लटी वृषा सूखि गे अंग ।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥४॥
चढ़त न चातक चित कवहुँ प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोष ॥५॥
वरपि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टुक ।
तुलसी परी न चाहिऐ चतुर चातकहि चूक ॥६॥
उपल वरपि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कवहुँ दूसरी ओर ॥७॥
पवि पाहन दामिनि गरज मारि मकोर खरि खीम्नि ।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीम्नि ॥८॥
मान राखियो मोगियो पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तव फवै जौ चातक मत लेहु ॥९॥

तुलसी-रत्नावली

तुलसी चातकही फवै मान राखियो प्रेम ।
 वक्र वुंद लग्गि स्वातिहू निदरि निवाहत नेम ॥१०॥
 तुलसी चातक माँगनो एक एक घन दानि ।
 देत जो भू भाजन भरत लेत जो धूँटक पानि ॥११॥
 तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ ।
 तुलसी जामु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥१२॥
 प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
 जाचक जगत कनाउडो कियो कनौडो दानि ॥१३॥
 नहि जाचत नहि सप्रही मीस नाइ नहि लेइ ।
 ऐसे मानी मागनेहि को बारिद विन देइ ॥१४॥
 को को न ज्यायो जगत मे जीवन दायक दानि ।
 भयो कनौडो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥१५॥
 साधन सोमति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु ।
 तुलसी चातक जलद की रीमि वृमि बुध काहु ॥१६॥
 चातक जीवन दायकहि जीवन समयँ सुरीति ।
 तुलसी अलख न लग्गि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥१७॥
 जीव चराचर जहँ लगें है सब को हित मेह ।
 तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥१८॥
 डोलत विपुल विहंग वन पिश्रत पोखरिन वारि ।
 सजल धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि ॥१९॥
 मुरम मीठे मानम मलिन कोकिल मोर चकोर ।
 सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर ॥२०॥

वास त्रेष बोलनि चलनि मानम मंजु मराल ।
 तुलसी चातक प्रेम की कीरति विसद विसाल ॥२१॥
 प्रेम न परखिअ परूपपन पयद सिखावन एह ।
 जग कह चातक पातकी ऊसर वरसै मेह ॥२२॥
 होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़ ।
 तुलसी गति प्रह्लाद की समुक्ति प्रेम-पथ गूढ़ ॥२३॥
 गरज आपनी मयन को गरज करत उर आनि ।
 तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुनानि ॥२४॥
 चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर ।
 तुलसी परबस हाड पर परिहैं पुहुमी नीर ॥२५॥
 बध्यो बधिक परयो पुन्यजल उलटि उठाई चोंच ।
 तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच ॥२६॥
 श्रंद फोरि कियो चेदुवा तुप परयो नीर निहारे ।
 गहि चंगुल चातक चतुर डारयो वाहिर वारि ॥२७॥
 तुलसी चातक देत सिख सुतहि वारहीं वार ।
 तात न तर्पन कीजिए चिना वारिधर धार ॥२८॥

सोरठ

जिअत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि ।
 सुरसरिहू को वारि मरत न मागेउ अरघ जल ॥२९॥
 सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की ।
 परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को ॥३०॥
 जाचै वारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल ।
 जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही मेह मन ॥३१॥

तुलसी-रत्नावली

दोहा

तुलसी केँ मत चातकहि केवल प्रेम पिआस ।
पिअत स्वाति जल जान जग जाँचत वारह मास ॥३२॥
आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु मूल ।
होइ हेतु चित चातकहि स्वाति सलिल अनुकूल ॥३३॥
उपन काल अरु देह खिन मग पंथो तन ऊख ।
चातक बतियाँ ना रुचीँ अन जल सींचे रूख ॥३४॥
अन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम ।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रवीन को काम ॥३५॥
एक अग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह ।
तुलसी जासों हित लगे वहि अहार वहि देह ॥३६॥
वित्रि रसना तनु स्याम है वंक चलनि विप खानि ।
तुलसी जस अवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥३७॥
आपु व्याध को रूप धरि कुहौ कुरगहि राग ।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग ॥३८॥
तुलसी मनि निज दुति फनिहि व्याधहि देउ दिखाइ ।
विह्वुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ ॥३९॥
जरत तुहिन लखि वनज वन रवि टै पीठि पराउ ।
उदय विकस अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ ॥४०॥
देउ आपनेँ हाथ जल मीनहि माहुर घोरि ।
तुलसी जिऐ जो वारि विनु तौ तु देहि कवि खोरि ॥४१॥
मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह ।
तुलमी एकै मीन को है साँचिलो मनेह ॥४२॥

तुलसी मिटै न मरि मिटेहुँ साँचो सहज सनेह ।
 मोरसिखा विनु मूरिहुँ पलुहत गरजत मेह ॥४३॥
 सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत करत सब कोइ ।
 तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥४४॥
 तुलसी जप तप नेम व्रत सब सबही तें होइ ।
 लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ ॥४५॥
 कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ ।
 ससि छवि हर रवि सदन तर मित्र कहत सब कोइ ॥४६॥
 कै लघु कै बड़ मीत भल सम सनेह दुख मोइ ।
 तुलसी ज्यों घृत मधु सरिम मिलें महाविष होइ ॥४७॥

(दोहावली से)

राम का विमान द्वारा अयोध्या को प्रस्थान

दोहा

प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि ।
हरप विषाद समेत तत्र चले विनय बहु भाखि ॥
लामवंत कपिराज नल अंगदादि हनुमान ।
सहित विभीषन जे अपर जूथप कपि बलवान ॥
कहि न सकहिँ कछु प्रेमवस भरि भरि लोचन वारि ।
मनमुख चितवहिँ रामतन नयननिमेष निवारि ॥

चौपाई

अतिसय प्रीति देखि रघुराई, लीन्हे सकल विमान चढाई ।
मन महुँ विप्र चरन सिर नावा, उत्तर दिसिहिँ विमान चलावा ।
चलत विमानु कोलाहल होई, जय रघुवीर कहहिँ सब कोई ।
सिंहासनु अति उच्च मनोहर, श्री समेत प्रभु बैठे तापर ।
राजत रामसहित भामिनी, मेरुसृंग जनु धनु दामिनी ।
रुचिर विमान चलेउ अति आतुर, कीन्ही सुमनवृष्टि हरपे सुर ।
परम-सुखद चलि त्रिविध वयारी, सागर मर सरि निर्मल वारी ।
मगुन होहिँ सुन्दर चहुँ पासा, मन प्रमत्त निर्मल सुभ आसा ।
रुह रघुवीर देखु रन सीता, लखिमन इहाँ हतेउ इंद्रजीता ।
हनुमान अगद कं मारे, रन महि परे निसाचर भारे ।
कुभकरन रावन दोउ भाई, इहाँ हते सुर-मुनि-दुख-दाई ।

दोहा

इहाँ सेतु बाँधेँ अरु धापेँ सिव सुखधाम ।
 सीतासहित कृपायतन संभुहि कीन्ह प्रनाम ॥
 जहँ जहँ करुनासिंधु बन कीन्ह वास विस्वाम ।
 सकल देखाये जानकिहि कहे सत्रन्हि के नाम ॥

चौपाई

सपदि विमानु तहाँ चलि आया, दंडकवन जहँ परम सुहावा ।
 कंभजादि मुनिनायक नाना, गये रामु सब के अस्थाना ।
 सकल रिपिन्ह सन पाइ असीसा, चित्रकूट आयउ जगदीसा ।
 तहँ करि मुनिन्ह केर संतोखा, चला विमान तहाँ ते चोखा ।
 बहुरि राम जानकिहि देखाई, जमुना कलि-मल-हरनि सुहाई ।
 पुनि देखी सुरसरी पुनीता, राम कहा प्रनाम करु सीता ।
 तीरथपति पुनि देखु प्रयागा, देखत जन्म-कोटि-अघ भागा ।
 देखु परमपावनि पुनि वेनी, हरनि सोक हरिलोक-निसेनी ।
 पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि, त्रिविध-ताप भवरोग नमावनि ।

दोहा

सीता सहित अवध कहँ कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
 मजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरपत राम ॥
 पहुरि त्रिवेनी आइ प्रभु हरपित मज्जनु कीन्ह ।
 कपिन्ह समेत महीसुरन्ह दान विविध विधि दीन्ह ॥

चौपाई

प्रभु छनुमंतहि कहा बुझाई, वरि बटुरूप अवधपुर जाई ।
 भरतहि कुसल हमारि सुनायहु, समाचार लेइ तुम्ह चलि आयहु ।

सुरत पवनसुत गवन्त भयऊ, तव प्रभु भरद्वाज पहिँ गयऊ ।
 नाना विधि मुनि पूजा कीन्ही, अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ।
 मुनिपद वदि जुगल कर जोरी, चढि विमान प्रभु चले बहोरी ।
 इहाँ निपाद सुना हरि आये, नाव नाव कहँ लोग बोलाये ।
 सुरसरि नाँधि जान जब आवा, उतरेउ तट प्रभु आयसु पावा ।
 तव सीता पूजी सुरसरी, बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ।
 दीन्हि असीस हरपि मन गंगा, सुंदरि तव अहिवात अभंगा ।
 सुनत गुहा धायेउ प्रेमाकुल, आयेउ निकट परम-सुख-संकुल ।
 प्रभुहि विलोकि सहित वैदेही, परेउ अवनि तन सुधि नहिँ तेही ।
 प्रीति परम विलोकि रघुराई, हरषि उठाइ लियो उर लाई ।

छंद

लियो हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राय रमापती ।
 वैठारि परम समीप वृक्षी कुसल सो कर वीनती ॥
 अब कुसल पदपंकज विलोकि विरंचि-शंकर-सेव्य जे ।
 सुखधाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते ॥
 सब भौँति अघम निपाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो ।
 मतिमद तुलसीदास सो प्रभु मोहवस विमराइयो ॥
 यह रावनादिचरित्र पावन राम-पद-रति-प्रद सदा ।
 कामादिहर विग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहि मुदा ॥

दोहा

समर विजय रघुवीर के चरित जे सुनहिँ सुजान ।
 विजय विवेक विभूति नित तिन्हहिँ देहिँ भगवान ॥
 यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु विचार ।
 श्री-रघु-नायक नाम तजि नाहिँ न आन अघार ॥

(रामचरितमानस से)

कवितावली

बालकांड

दुर्मिल सवैया

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच-विमोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक से ॥
'तुलसी' मनरंजन रंजित-अंजन नैन सु-खंजन-जातक से ।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से विकसे ॥ ॥
पग नूपुर औ' पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये ।
नवनील कलेवर पीत भंग्गा फलकै, पुलकै नृप गोद लिये ॥
अरविद सो आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये ।
मन सों न वस्यो अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिये ॥२॥
कवहूँ ससि माँगत आरि करै, कवहूँ प्रतिविंब निहारि डरै ।
कवहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सवै मन मोद भरै ॥
कवहूँ रिसिआइ कहै हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै ।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी'-मन-मंदिर में विहरै ॥३॥
पद-कंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं-सर पंकज-पानि लिये ।
लरिका-सँग खेलत डोलत हैं, सरजू-तट, चौहट, हाट, हिये ॥
'तुलसी' अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये ।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहीं जग में फल कौन जिये ॥४॥

छप्पय

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पव्वै समुद्र सर ।
 न्याल वधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर ॥
 दिग्गयद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर ।
 सुरविमान, हिमभानु, भानु सघटित परस्पर ॥
 चौंके विरंचि सकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ ।
 ब्रह्माड खंड कियो चढ धुनि, जबहि राम सिवधनु दल्यौ ॥५॥

मनहरण कवित्त

नगर निसान वर वाजै, न्योम दुदुभी,
 विमान चढ़ि गान कै-कै सुरनारि नाचहीं ।
 जय जय तिहूँ पुर, जयमाल राम-उर,
 बरपै सुमन सुर, रुरे रूप राचहीं ॥
 जनक को पन जयो, सबको भावतो भयो,
 'तुलसी' मुदित रोम-रोम मोद माचहीं ।
 सांवरो किसोर, गोरी सोभा पर वृन तोरी,
 'जोरी जियौ जुग-जुग' सखीजन जाँचहीं ॥६॥

सवैया

गर्भ के अर्भक काटन को पटु-धार कुठार कराल है जाको ।
 सोई हौं वृक्षत राल-सभा 'धनु को दल्यौ ?' हौं दलिहौं बल ताको ।
 लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै, मरिहै, करिहै कछु साको ।
 गोरो गहर गुमान भरो कहीं कौंसिक छोटे-सो ढोटे है काको ॥७॥

काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए ।
 लक्खन-राम विलोकि सप्रेम, महारिसि ते फिरि आँखि दिखाए ॥
 धीर-सिरोमनि, वीर बड़े, विनयी, विजयी, रघुनाथ सुहाए ।
 लायक हे भृगुनायक सो धनु-सायक सौँपि सुभाय सिधाए ॥८॥

अयोध्याकांड

17

मत्तगयद सवैया

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अगनि पाई ।
श्रीध तजी मगवास के रूख ज्यों पथ के साथी ज्यों लोग-लुगाई ॥
संग सुवधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई ।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥६॥

छंद

“कीजै कहा, जीजी जू ।” सुमित्रा परि पायें कहै,
‘तुलसी’ सहावै विधि सोई सहियतु है ।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही ते जानियतु,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है ॥
नाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माँह,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है ।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहु विनु राहु गहियतु है” ॥१०॥

मत्तगयद सवैया

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहँ कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू ।
परमे पगधूरि तरै तरनी, वरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ॥
‘तुलमी’ अवलव न और कछू, लरिका केहि भौंति लिआइहौं जू ।
वरु मारिण मोहिं, बिना पग घोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥११॥

रावरे दोप न पायँन को, पगधूरि को भूरि-प्रभाउ महा है ।
पाहन ते वन-वाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढाइहौं, आयसु होत कहा है ।
तुलसी सुनि केवट के घर घैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥१२॥

छंद

पात भरी सहरी, सकल सुत वारे-वारे,
केवट की जाति कछू वेद ना पढ़ाइहौं ।
मत्र परिवार मेरो याही लागि, राजा जृ !
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सौं निपाद हँ कै वाद न बढ़ाइहौं ।
तुलसी के ईस राम रावरी सौं, साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥१३॥

मत्तगयंद सवैया

पुर तें निकसीं रघुवीर-वधू,
धरि धीर दए मग मं डग द्वै ।
भलकीं भरि भाल कनी जल की,
पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिरि ब्रूझति है 'चलनो अब केतिक,
पर्नकुटी करिहौ कित हूँ ?'
तिय की लखि आतुरता पिय की
अखियो अति चारु चली जल च्यै ॥१४॥

‘जल को गए लक्ष्मण हैं लरिका, परिखौ पिय, छाँह घरीक हूँ ठाढ़े ।
 पौछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े’ ।
 ‘तुलसी’ रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै वैठि विलंब लौं कंटक काढ़े ।
 जानकी, नाह को नेह लख्यौ पुलको तनु वारि विलोचन बाढ़े ॥१५॥

वनिता वनी स्यामल गौर के बीच, विलोकहु री सखी । मोहिं-सी हूँ ।
 मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं ? सकुचाति मही पद-पंकज छुवै ॥
 ‘तुलसी’ सुनि ग्रामवधू विथकीं, पुलकीं तन औ’ चले लोचन चवै ।
 सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥१६॥

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मै न लियो है ।
 वान कमान निपग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि-वेप कियो है ॥
 सग लिये विधु-वैनी वधू, रति को जेहि रचक रूप दियो है ।
 पाँयन ती पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है ॥१७॥

रानी में जानी अजानी महा,
 पवि पाहनहू तें कठोर हियो है ।
 राजहु काज अकाज न जान्यो,
 कएो तिय को जिन कान कियो है ॥
 ऐसी मनोहर मूरति ये,
 विष्टुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?
 आँगिन में सखि । राखिवे जोग,
 इन्हें किमि कै वनवास दियो है ॥१८॥

सीस जटा, उर बाहु विसाल, -
 विलोचन लाल, तिरीछी-सी भौहैं ।
 तून सरासन बान धरे,
 'तुलसी' बन-मारग मे सुठि सोहैं ॥
 सादर वारहिं वार सुभाय
 चितै तुम त्यों हमरो मन मोहै ।
 पूछति प्रामवधू सिय सों
 'कही साँवरे-से, सखि रावरे को हैं ?' ॥१६॥
 सुनि मुंदर वैन सुधारस-साने,
 सयानी हैं जानकी जानी भली ।
 तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं
 समुझाड कछु मुसुकाड चली ॥
 'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै
 अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
 अनुराग-तड़ाग मे भानु-उदै
 विगसी मनो मंजुल कंज-कली ॥२०॥
 धरि धीर कहैं 'चलु देखिय जाइ
 जहाँ सजनी रजनी रहिहैं ।
 कहिहै जग पोच, न सोच कछु,
 फल लोचन आपन तौ लहिहैं ॥
 सुख पाइहै कान सुने वतियाँ,
 कल आपुस में कछु पै कहिहैं ।'
 'तुलसी' अति प्रेम लगी पलकैं,
 पुलकीं लखि राम हिचे महि हैं ॥२१॥

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि,
 पानि सरासन सायक' लै ॥
 वन खेलत राम फिरै मृगया,
 'तुलसी' छवि सो बरनै किमि कै ?
 अवलोकि अलौकिक रूप मृगी
 मृग चोँकि चकैँ चितवैँ चित दै ।
 न डगै न भगैँ जिय जानि सिंलीमुख
 पंच धरे रतिनायक है ॥२२॥

विध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा, विनु नारि दुखारे ।
 गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि, भे मुनिवृंद सुखारे ॥
 ह्यैहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे ।
 कोन्हीं भली, रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे ॥२३॥

किष्किधाकांड

मनहरण कवित्त

जव अंगदादिन की मति-गति मद भई,
 पवन के पूत को न कूदिवे को पलु गो ।
 साहसी ह्यै सैल पर सहसा सकेलि आइ,
 चितवत चहुँ ओर, औरन को कलु गो ॥
 'तुलसी' रसातल को निकसि सलिल आयो,
 कोल कलमल्यो, अहि कमठ को वलु गो ।
 चारिहू चरन के चपट चाँपे चिपिटि गो,
 उचके उचकि चारि अगुल अचलु गो ॥२४॥

सुन्दरकांड

मनहरण कवित्त

वालधी विसाल विकराल-ज्वाल-जाल मानौं,
 लंक लीलिवे को काल रसना पसारी है ।
 कैधौ व्योमवीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
 वीररस वीर तरवारि-सी उधारी है ॥
 'तुलसी' सुरेस-चाप, कैधौ दामिनी-कलाप,
 कैधौ चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
 देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहै,
 'कानन उजारयो अब नगर प्रजारी है' ॥२५॥

जहाँ तहाँ चुचुक विलोकि चुचुकारी देत,
 'जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे ।
 कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
 ढोटे-छोटे छोहरा, अभागे भोरे भागि रे ॥
 हाथी छोरो, घोरा छोरो, सहिष वृषभ छोरो,
 छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे ॥
 'तुलसी' विलोकि अकुलानी जातुधानी कहै,
 वार वार कछो पिय कपि सौं न लागि रे ॥२६॥

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
 कछो 'धरो धरो' धाए वीर बलवान हैं ।
 लिए सृल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
 भाजन सनीर, धीर धीरे धनु-वान हैं ॥

‘तुलसी’ समिध सौंज, लंक-जझकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव तिल धान हैं ।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हवि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं ॥२७॥

गाज्यो कपि गाज ज्यों, विराज्यो ज्वालजाल-जुत,
भाजे वीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो ।
‘धाओ धाओ धरो’ सुनि धाई जातुधान-धारि,
वारिधारा उलदैँ जलद ज्यों न सावनो ॥
लपट ऋपट ऋहराने, हहराने वात,
भहराने भट, परयो प्रबल परावनो ।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
‘नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो’ ॥२८॥

बडो विकराल वेप देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद, सविपाद कहै रावनो ।
वेग जीन्यो मारुत, प्रताप मारतड कोटि,
कालऊ करालता, बड़ाई जीतो वावनो ॥
‘तुलसी’ सयाने जातुधान पछिताने मन,
‘जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो ।’
काहे की कुसल रोपे राम घामदेवहू के,
त्रिपम बली सों वादि वैर को घटावनो ॥२९॥

‘पानी पानी पानी’ सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है ।

वसन विसारै, मनि-भूपन सँभारत न,
 आनन सुखाने कहै 'क्योंहूँ कोऊ पालि है ?'
 'तुलसी' मंदोवै भीजि हाथ, धुनि साथ कहै,
 'काह कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है ।'
 नापुरो विभीषन पुकारि वार-वार कह्यो,
 'वानर बड़ी बलाइ घने घर घालि है' ॥३०॥

'कानन उजारयो तौ उजारयो, न विगारयो कबू,
 वानर विचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों ।
 निपट निडर देखि काहू न लख्यो विसेषि,
 दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों ॥
 छोटे औ' बडेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
 साँपनि सों खेलै, मेलै गरे छुराधार सों ।'
 'तुलसी' मंदोवै रोइ-रोइ के विगोवै आपु,
 'वार वार कहाँ मैं पुकारि दाढ़ीजार सों' ॥३१॥

लागि लागि आगि, भागि-भागि चले जहाँ तहाँ
 धीय को न माय, वाप पूत न सँभारहीं ।
 छूटे वार, वसन उघारे, धूमधुंध अंध,
 कहै वारे बूढ़े 'वारि वारि' वार-वारहीं ॥
 ह्य हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
 भारी भीर ठेलि-पेलि रौंद खौँदि दारहीं ।
 नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
 'तात तात ! तौसियत, भौँसियत भारहीं' ॥३२॥

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट-उर,
 दिन दिन विकल सकल सुख-राँक सो ।
 नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
 होत न विसोक, श्रोत पावै न मनाक सो ॥
 राम की रजाय तें रसायनी समीर-सूनु,
 उतरि पयोधि-पार सोधि सरवाक सो ।
 जातुधान बुट, पुटपाक लक जातरूप,
 रतन जतन जारि कियो है मृगाक सो ॥३३॥

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लधि लखि
 लंक सिद्धिपीठि निसि जागो, है मसान सो ।
 'तुलसी' विलोकि महासाहस प्रसन्न भई,
 देवी सिय सारिपी, दियो है वरदान सो ॥
 बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ,
 भानुकुल-भानु को प्रताप-भानु-भानु सो ।
 करत विसोक लोक कोकनद, कोक-कपि,
 कहै जामवत आयो-आयो हनुमान सो ॥३४॥

लंकाकांड

मत्तगयंद सवैया

जब पाहन भे वनवाहन-से, उतरे वनरा 'जय राम' रढे ।
 'तुलसी' लिए सैल-मिला सब सोहत, सागर उयो बलवारि बढे ॥
 करि कोप करै रघुवीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूटि चढे ।
 चतुरंग चमू पल में दलिकै रन रावन राढ के हाड गढे ॥३५॥

रोप्यो पाँव पैज कै विचारि रघुवीर-बल,
 लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है ।
 तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
 धराधर धीर भार सहि न सकतु है ॥
 महावली बालि को, द्रवत दलकति भूमि,
 'तुलसी' उछरि सिंधु, मेरु मसकतु है ।
 कमठ कठिन पोठि, घट्टा परो मंदर को,
 आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है ॥३६॥

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छत्रीले ।
 भारी गुमान जिन्हें मन मे, कवहूँ न भए रन में तनु ढीले ॥
 'तुलसी' गज-से लखि केहरि लौं भूपटे-पटके सब सूर सलीले ।
 भूमि परे भट घूमि कराहत, हॉकि हनं हनुमान हठीले ॥३७॥

सूर सँजोइल साजि सुवाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं ।
 भारी भुजा भरि, भारी सरीर, बली विजयी सब भाँति भले हैं ॥
 'तुलसी' जिन्हें धाए धुकै धरनीधर, धौर धकानि सो मेरु हले हैं ।
 ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-जानि ज्यों दारिद द्रावि दले हैं ॥३८॥

गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनए घन सावन के ।
 'तुलसी' उत भुंड प्रचंड भुके, भूपटें भट जे सुर-दावन के ॥
 विरुके विरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि वैर-बढ़ावन क ।
 रन मारि मर्ची उपरौ-उपरा, भले वीर रघुप्पति रावन के ॥३९॥

भूलना छंद

कतहुँ विटप भूधर उपारि पर सेन बरक्खत ।
 कतहुँ वाजि सौं बाजि मर्दि, गजराल करक्खत ।
 चरन-चोट चटकन-चकोट अरि उर सिर बज्जत ।
 विकट कटक विहरत, वीर बारिद जिमि गज्जत ।
 लंगूर लपेटत पटक भट, 'जयति राम जय' उच्चरत ।
 तुलसीस पवन-नदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥४०॥

छंद

ओम्फरी की मोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे
 मूँड के कमंडलु-खपर किये कोरि कै ।
 जोगिनी भुटुग भुंड भुंड बनी तापसी सी,
 तीर-तीर वैठीं सो समर-सरि खोरि कै ॥
 सोनित सौं सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
 प्रेत एक पियत वहोरि घोरि-घोरि कै ।
 'तुलसी' वैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
 हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै ॥४१॥

सवैया

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हडावरि फूटि ।
 रावन वीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी ॥
 सोनित छीट-छटानि-जटे 'तुलसी' प्रभु सोहैं, महाछवि छूटी ।
 मानो मरफत्त-सैल विसाल में फौलि चलीं वर वीरवहूटी ॥४२॥

(कवितावली से)

गीतावली

बालकांड

१

राग केदारा

पौढिये लालन, पालन हौं भुलावौं ।

कर पद मुख चखकमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं ॥१॥

बाल-विनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि-खानि खुलावौं ।

तेइ अनुराग ताग गुहिवे कहँ मति-मृगनयनि बुलावौं ॥२॥

तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं ।

घारु चरित रघुवर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥३॥

२

राग बिजावल

सोछत सहज सुहाये नैन ।

खंजन मीन कमल सकुचत तव जव उपमा चाहत कवि दैन ॥१॥

सुंदर सब अगनि सिसु-भूषण राजत जनु सोभा आये लैन ।

बड़ो लाभ, लालची लोभअस रहि गयो लखि सुखमा बहु मैन ॥२॥

भोर भूप लिये गोठ मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल वैन ।

यालक-रूप अनूप राम-छवि निवसति तुलसीदास-उर-ऐन ॥३॥

३

राग नट

विहरत अवध-वीथिन राम ।

संग अनुज अनेक सिसु, नव-नील-नीरद-स्याम ॥१॥
 तरुन अरुन-सरोज-पट बनी, कनकमय पदत्रान ।
 पीत-पट कटि तून वर, कर ललित लघु धनु-वान ॥२॥
 लोचननि को लहत फल छवि निरखि पुर-नर-नारि ।
 वसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ॥३॥

४

अहल्योद्धार, राग सूहो

रामपद-पटुम-पराग परी ।

ऋषितिय, तुरत त्यागि पाहन-तनु छविमय देह धरी ॥१॥
 प्रबल पाप पति-साप दुसह दब दारुन जरनि जरी ।
 कृपासुधा सिँचि विबुध-वेलि ज्यौँ फिर सुख-फरनि फरी ॥२॥
 निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुवति वराय वरी ।
 सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ डकटक तें न टरी ॥३॥
 वरनति हृदय मरूप, सील, गुन प्रेम-प्रमोद-भरी ।
 तुलसीदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ? ॥४॥

५

राग गौरी

नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ, री ।
 राजकुँवर-मूरति रचिवेकी रुचि,
 सुविरचि भ्रम कियो है कितौ, री ॥१॥

नख-सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो
न परत सुख होत जिती, री ।

माँवर रूप-सुधा भरिचे कहे,
नयन-कमल कल कलस रितौ, री ॥२॥

मेरे जान इन्हें बोलिचे कारन
चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री ।

तुलसी प्रभु भजिहैं संभु-वनु,
भूरिभाग सिय-मातु-पितौ, री ॥३॥

६
राग केदारा

दूलह राम, सीय दुलही री !

घन-दामिन वर वरन, हरन-मन,
सुंदरता नखसिख निवर्ही, री ॥१॥

व्याह-विभूपन-वसन-विभूषित,
सखि अचली लखि ठगि सी रहौ, री ।

जीवन-जनम-लाहु, ल चन-फल है इतनोइ,
लख्यो आजु सही, री ॥२॥

सुखमा सुरभि सिगार-छार दुहि
मयन अमियमय कियो है दही, री ।

माँध माखन सिय-राम सँवारे,
सकल भुवन छवि मनहु मही, री ॥३॥

तुलसीदास जोरी देखत सुख-सोभा,
अतुल, न जाति कही, री ।

रूप-रासि विरची विरची मनो,
सिला लवनि रति-काम लही री ॥४॥

अयोध्याकांड

७

राम गौरी

रहि चलिए सुन्दर रघुनायक ।

जो सुत । तात-वचन-पालन-रत,

जननिउ तात । मानिबे लायक ॥१॥

वेद-विदित यह वानि तुम्हारी,

रघुपति सदा संत-सुखदायक ।

राखहु निज मरजाद निगमकी,

हौं बलि जाउँ, धरहु धनुसायक ॥२॥

सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप,

सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक ।

यह दूसन विधि तोहि होत

अब रामचरन-वियोग-उपजायक ॥३॥

मातु वचन सुनि स्रवत नयन जल,

कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक ।

तुलसीदास सुरकाज न साध्यौ तौ

तो दोष होय मोहि महि आयक ॥४॥

८

राग सोरठ

राम । हौं कौन जतन घर रहिहौं ?

वार वार भरि अक गोद लै ललन कौनसों कहिहौ ॥१॥

इहि आँगन विहरत मेरे वारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हे ।
 कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत, बहु विनोद तुम्ह कीन्हे ॥२॥
 जिन्ह भवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौ अनुरागी ।
 तिन्ह भवननि बनगवन सुनति हौँ, मोतें कौन अभागी ? ॥३॥
 जुग सम निमिप जाहि रघुनंदन, बदनकमल विनु देखे ।
 जौ तनु रहै धरष वीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ? ॥४॥
 तुलसीदास प्रेमवस श्रीहरि देखि विकल महतारी ।
 गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥५॥

६

राग यिलावल

जवहि रघुपति-सँग सीय चली ।
 शिकल-वियोग लोग-पुरतिय कहैं, अति अन्याउ, अली ॥१॥
 कोउ कहैं, मनिगन तजत काँच लागि, करत न भूप भली ।
 कोउ कहैं, कुल-कुवेलि कैकेयी दुख-विष-फलनि फली ॥२॥
 एक कहैं, वन जोग जानकी ! विधि बड़ विषम बली ।
 तुलसी कुलिसहु को कठोरता तेहि दिन दलकि दली ॥३॥

१०

ठाढ़े हैं लपन कमलकर जोरे ।
 उर धकधकी, न कहत कल्लु सकुचनि,
 प्रभु परिहरत सवनि तृन तोरे ॥१॥
 कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन,
 प्रान-कृपान वीर-साँ छोरे ।
 तात विदा माँगिए मातुसों,
 बनिहै वात उपाइ न औरे ॥२॥

जाइ चरन गहि आयसु जाँची,
 जननि कहत बहुभाँति निहोरे ।
 सिय रघुवर-सेवा सुचि ह्वैहौ तौ,
 जानिहौँ, सही सुत मोरे ॥३॥

कीजहु इहै विचार निरतर,
 राम समीप सुकृत नहि थोरे ।
 तुलसी सुनि सिष चले चकित-चित,
 उड़्यो मानो विहग अधिक भए भोरे ॥४॥

११

तू देखि देखि री । पथिक परम सुंदर दोऊ ।
 सरकत-कलधौत-वरन, काम-कोटि-कातिहरन,
 चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ ॥१॥

कर सर-धनु, कटि निपंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
 सग चद्रवदनि वधू, सुदरि सुठि सोऊ ।
 तापस वर वेप किए, सोभा सब लूटि लिए,
 चितके चोर, वय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥२॥

दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
 परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पोऊ ।
 तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सधन,
 वृपिन ज्यौँ सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥३॥

१२

राग केदारा

मनोहरताके मानो ऐन ।

स्यामल-गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥१॥

बीच बधू विधुवदनि विराजति, उपमा कहूँ कोऊ है न ।

मानहु रति-ऋतुनाथ सहित मुनि-वेष बनाए है मैंन ॥२॥

किधौ सिंगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि चले जग-चित्त-वित लैन ।

अद्भुत त्रयी किधौ पठई है विधि मग-लोगन्हि सुख दैन ॥३॥

मुनि सुचि सरल सनेह सुहावने प्रामबधुन्हके बैन ।

तुलसी प्रभु तरु तर विलेवे, किए प्रेम कनौडे कै न ? ॥४॥

१३

राग गौरी

पुनि न फिरे दोउ वीर वटाऊ ।

स्यामल-गौर, महज सुंदर, सखि !

वारक बहुरि विलोकिये काऊ ॥१॥

कर कमलनि सर, सुभग सरासन,

कटि मुनिवसन-निपंग सोहाए ।

भुज प्रलंब, सब अग मनोहर,

धन्य सो जनक-जननि जेहि जाए ॥२॥

सरद-विमल-विधु-वदन, जटा सिर,

मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन ।

तुलसीदास मनमथ मारगमे,

राजत कोटि-मदन-मदमोचन ॥३॥

१४

राग केदारा

बहुत दिन वीते सुधि कछु न लही ।
 गए जो पथिक गोरे-साँवरे सलोने,
 सखि । संग नारि सुकुमारि रही ॥१॥
 जानि-पहिचानि बिनु आपुते, आपुनेहुते,
 प्रानहुतें प्यारे प्रियतम उपही ।
 सुधाके, सनेहहूके सार लै सँवारे विधि,
 जैसे भावते हैं भॉति जाति न कही ॥२॥
 बहुरि विलोकिवे कवहुक, कहत,
 तनु पुलक, नयन जलधार बही ।
 तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती सिथिल,
 विनु प्रयास परी प्रेम सही ॥३॥

१५

राग मत्तार

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ।

वरपाञ्चतु प्रवेश विसेष गिरि देखन मन अनुरागत ॥१॥
 चहुँदिसि वन संपन्न, विहँग-मृग वोलत सोभा पावत ।
 जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥२॥
 सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि ।
 मनहु आदि अभोज विराजत सेवित सुर-मुनि भृगनि ॥३॥
 सिम्बर परस घन-घटहि, मिलति वग-पाँति सो छवि कवि वरनी ।
 आदि बराह विहरि वारिधि मनो उरुयो है दसन धरि धरनी ॥४॥

जल-जुत विमल सिलनि मलकत नभ-वन-प्रतिविंब तरंग ।
 मानहु जग-रचना विचित्र विलसति विराट अंग अंग ॥१॥
 मंडाकिनिहि मिलत भरना भरि भरि भरि भरि जल आछे ।
 तुलसी सकल सुकृत-सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे ॥६॥

१६

राग सोरठ

आजुको भोर, और सो, माई ।

सुनौ न द्वार वेद-वंदी-धुनि, गुनिगन-गिरा सोहाई ॥१॥
 निज निज सुंदर पति-सदननिते रूप-सोल-छवि-छाई ।
 लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतवधू न आई ॥२॥
 वृष्णी हौं न विहँसि मेरे रघुवर 'कहौं री ! सुमित्रा माता ?'
 तुलसी मनहु महासुख मेरो देखि न सकेउ विधाता ॥३॥

१७

जननी निरखति वान-धनुहियाँ ।

वार वार उर-नैननि लावति प्रभुजूकी ललित पनहियाँ ॥१॥
 कवहु प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय वचन सवारे ।
 उठहु तात ! वलि मातु वदनपर, अनुज-सखा सब द्वारे ॥२॥
 कवहु कहति यों, वड़ी वार भइ, जाहु भूप पहाँ, भैया ।
 बंधु योलि जेइय जो भावै, गई निह्वावरि मैया ॥३॥
 कवहु समुझि वनगवन रामको रहि चकि चित्र लिखी-सी ।
 तुलसीदास वह समय कहेते लागति प्रीति सिखि-सी ॥४॥

१८

माई री ! मोहि कोउ न समुझावै ।

राम-गवन साँचो किधौँ सपनो, मन परतीति न आवै ॥१॥
 लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम-लषन अरु सीता ।
 तदपि न मित्त दाह या उरको, विधि जो भयो विपरीता ॥२॥
 दुख न रहै रघुपतिहि विलोकत, तनु न रहै बिनु देखे ।
 करत न प्रान पयान, सुनहु, सखि ! अरुभि परी यहि लेखे ॥३॥
 कौसल्याके विरह-वचन सुनि रोइ उठी सब रानी ।
 तुलसीदास रघुवीर-विरहकी पीर न जाति बखानी ॥४॥

१९

ऐसे तैं क्यों कहु वचन कह्यो री ?

‘राम जाहु कानन’, कठोर तेरो कैसे धौँ हृदय रह्यो, री ॥१॥
 दिनकर-वस, पिता दसरथ-से, राम-लपन-से भाई ।
 जननी ! तू जननी ? तौ कहा कहौँ, विधि केहि खोरि न लाई ? ॥२॥
 हौँ लहिहौँ सुख राजमातु हँ, सुत सिर छत्र धरैगो ।
 कुल-कर्लक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो ? ॥३॥
 ऐहँ राम, सुखी सब हँ हैं, ईस अजस मेरो हरिहँ ।
 तुलसीदास मोको बड़ो सोच हँ, तू जनम कौनि विधि भरिहँ ॥४॥

२०

ताते हौँ देत न दूपन तोहू ।

रामविरोधी उर कठोरतें प्रगट कियो हँ विधि मोहू ॥१॥
 सुन्दर सुखद सुसील सुधानिधि, जरनि जाइ जिहि जोए ।
 विष धाननि वंधु कहियत विधु ! नातो मित्त न धोए ॥२॥

होते जौ न सुजान-सिरोमनि राम सबके मन माहीं ।
 ती तोरी फरतूनि, मातु ! सुनि, प्रीति-प्रतीति कहा हीं ? ॥३॥
 मृदु मंजुल सीची-सनेह सुचि सुनत भरत-वर-वानी ।
 तुलसी 'साधु साधु' सुर-नर-मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥४॥

२१

सुकसौं गहवर हिये कहै सारो
 वीर कीर । सिय-राम-लपन विनु लागत जग अधियारो ॥१॥
 पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित अनहित न विचारो ।
 कुलगुर-सचिव-साधु सोचतु, विधि को न वसाइ उजारो ? ॥२॥
 अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो ।
 सुने न वचन करुना करके, जव पुर-परिवार सँभारो ॥३॥
 भैया भरत भावतेके सँग बन सब लोग सिधारो ।
 हम पैख पाइ पीजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ॥४॥
 सुनि खग कहत अंब ! मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो ।
 गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम-गुन-गारो ॥५॥
 जीवन जग जानकी-लखनको, मरन महीप सँवारो ।
 तुलसी और प्रीतिकी चरचा करत, कहा कछु चारो ॥६॥

२२

राग केदारा

जानत हौं सबहीके मनकी ।
 तदपि, कृपालु ! करौं विनती सोइ,
 सादर, सुनहु दीन-हित जनकी ॥१॥

ए सेवक संतत अनन्य अति,
 ज्यों चातकहि एक गति घनकी ।
 यह विचारि गवनहु पुनीत पुर,
 हरहु दुसह आरति परिजनकी ॥२॥
 मेरो जीवन जानिय ऐसोइ, जियै,
 जैसो अहि, जासु गई मनि फनकी ।
 भेटहु कुलकलंक कोसलपति,
 आग्या देहु नाथ मोहि वनकी ॥३॥
 मोको जोड लाइय लागै सोइ,
 उतपति है कुमातुते तनकी ।
 तुलसिदास सत्र दोष दूरि करि,
 प्रभु अब लाज करहु निज पनकी ॥४॥

२३

राग सोरठ

आली । हौं इन्हहि बुझावौं कैसे ?

लेत हिये भरि भरि पतिको हित मातृहेतु सुत जैसे ॥१॥
 वार वार हिहिनात हेरि उत, जो बोलै कोउ द्वारे ।
 अग लगाइ लिए वारेतें करुनामय सुत प्यारे ॥२॥
 लोचन सजल, सदा सोवत-से, खान-पान विसराए ।
 चितवत चौंकि नाम मुनि, मोचत राम-सुरति उर आए ॥३॥
 तुलसी प्रभुके विरह-वधिक हठि राजहंस-से जोरे ।
 ऐमेहु दुखित देगि हौं जीवति राम-लखन के घोरे ॥४॥

२४

राघौ । एक वार फिरि आवौ ।

ए घर वाजि विलोकि आपने, बहुरो वनहि सिधावौ ॥१॥
 जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, वार वार चुचुकारे ।
 क्यों जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट विसारे ॥२॥
 भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।
 तदपि दिनहिं दिन होत भाँवरे, मनहु कमल हिम-भारे ॥३॥
 सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं वन, कहियो मातु सँदेसो ।
 तुलसी मोहि और सबहिनते इन्हको बड़ो अँदेसो ॥४॥

अरण्यकांड

२५

राग सौरठ

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।

नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहु अरघजल दीन्हों ॥१॥
 सुनहु, लपन ! खगपतिहि मिले वन मैं पितु-मरन न जान्यौ ।
 सहि न सक्यौ सो कठिन विधाता, बड़ो पछु आजुहि भान्यौ ॥२॥
 बहु विधि राम कछौ तनु राखन, परम धीर नहि डोल्क्यौ ।
 रोकि प्रेम, अबलोकि वदन-विधु, वचन मनोहर दोल्क्यौ ॥३॥
 तुलसी प्रभु भूठे जीवन लागि समय न धोखो लैहों ।
 जाको नाम भरत मुनिदुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहों ? ॥४॥

सुन्दरकांड

२६

राग केदारा

कवहूँ, कपि ! राघव आवहिंगे ?
 मेरे नयनचकोर प्रीतिबस,
 राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥१॥
 मधुप, मराल, मोर, चातक,
 ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
 शंग अग छवि भिन्न भिन्न सुख,
 निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥२॥
 विरह-अग्नि जरि रही लता,
 ज्यों कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
 निज वियोग-दुख जानि दयानिधि,
 मधुर वचन कहि समुझावहिंगे ॥३॥
 लोकपाल, सुर, नाग, मनुज
 सब परे वदि कव मुकतावहिंगे ?
 रावनवध रघुनाथ-विमल-जस,
 नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥४॥
 यह अभिलाप रैन-दिन मेरे,
 राज विभीषन कव पावहिंगे ।
 तुलसीदास प्रभु मोहजनित भ्रम,
 भेदबुद्धि कव विसरावहिंगे ? ॥५॥

२७

राग मारु

कपिके चलत सियको मनु गह्वरि आयो ।
 पुलक सिधिन भयो सररी
 नीर नयनन्हि छायो ॥१॥
 रुधन चह्यो सँदेस, नहि कह्यो, पियके,
 जियकी जानि हृदय दुसह दुख टुरायो ।
 देखि दसा व्याकुल हरीस, प्रीपमके,
 पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥२॥
 मीचते नीच लगी धमरता, छलको,
 न बलको निरखि थल परुप प्रेम पायो ।
 कै प्रयोध मातु-प्रीतिसो अमीस,
 दीन्हीं ह्वै हैं तिहारोई मन भायो ॥३॥
 करुना-कोप-लाज-भय-भरो कियो गौन,
 मौनही चरन-कमल सीस नायो ।
 यह सनेह-सरवस समौ, तुलसी,
 रसना रूखी. ताहीते परत गायो ॥४॥

२८

राग केदारा

तुम्हरे विरह भई गति जौन ।
 चित है मुनहु, राम करुनानिधि ।
 जानौ कछु, पै सकौ कटि हौं न ॥१॥

लोचन-नीर कृपिनके धन ज्यों,
 रहत निरतर लोचनन-कोन ।
 'हा' धुनि खगी लाज-पिंजरी महुँ,
 राखि हिये बडे बाधिक हठि मौन ॥२॥

जेहि वाटिका वसति, तहुँ खग-मृग,
 तजि तजि भजे पुरातन मौन ।
 स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहु,
 तेहि मग पगु न धच्यो तिहुँ पौन ॥३॥

तुलसिदास प्रभु । दसा सीयकी
 मुख करि कहत होति अति गौन ।
 दीजै वरस, दूरि कीजै दुख,
 हौ तुम्ह आरत-आरति-दौन ॥४॥

लंकाकांड

२६

राग केदारा

राम लपन उर लाय लए हैं ।

भरे नीर राजीव-नयन, सब अँग परिताप तए हैं ॥१॥
 कहत ससोक विलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथए हैं ।
 सेवक-सखा भगति-भायप-गुन चाहत अब अथए हैं ॥२॥
 निज कीरति-करतूति, तात । तुम सुकृती सकल जए हैं ।
 मैं तुम्ह त्रिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लए हैं ॥३॥

मेरे पनकी लाज इहाँलौं हठि प्रिय प्राण दए हैं ।
 लागति साँगि विभीषन ही पर, सीपर आपु भए हैं ॥४॥
 सुनि प्रभु-वचन भालु, कपि-गन, सुर सोच सुखाड गए हैं ।
 तुलसी आइ पवनसुत-विधि मानो फिरि निरमये नए है ॥५॥

३०

राग सोरठ

मेरो सब पुरुपारथ थाको ।

विपति बँटावन बंधु-ब्राहु विनु करौं भरोसो काको ॥१॥
 सुनु, सुप्रोव । साँचेहू मोपर फेरचो वदन विधाता ।
 ऐमे समय समर-सकट हौ तज्यो लखन-सो भ्राता ॥२॥
 गिरि, कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज संवाती ।
 छैदै कहा विभीषनकी गति, रही सोच भरि छाती ॥३॥
 तुलसी सुनि प्रभु-वचन भालु-कपि सकल विकल हिय हारे ।
 जामवंत हनुमंत बोलि तव, आंगर जानि प्रचारे ॥४॥

३१

राग केदारा

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुवीरै ।

पाइ सजीवन, जागि कहत यों प्रेमपुलकि विसराय शरीरै ॥१॥
 मोहि कहा बूझत पुनि पुनि, जैसे पाठ-अरध-चरचा कीरै ।
 सोभा-सुख, छति-लाहु भूपकहैं, केवल कांति-मोल हीरै ॥२॥
 तुलसी सुनि सौमित्रि-वचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै ।
 उपमा राम-लपनकी प्रीतिकी क्यों दीजै खीरै-नीरै ॥३॥

३२

राग सोरठ

वैठी सगुन मनावति माता ।

कव ऐहें मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग । फुरि बाता ॥१॥
 दूध-भातकी दोनी दैहौं, सोने चोंच मदैहौं ।
 जब सिय-सहित विलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥२॥
 अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
 गनक बोलाइ, पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥३॥
 तेहि अवसर कोउ भरत निकटतें समाचार लै आयो ।
 प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन भरत जल पायो ॥४॥

उत्तरकांड

३३

राग सोरठ

कैकेयी जौलौं जियति रही ।

तौलौं चात मातुसौं मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥१॥
 मानी राम अधिक जननीतें, जननिहु गँस न गही ।
 मीय-लपन रिपुद्वन राम-रुख लखि सबकी निवही ॥२॥
 लोकरु-वेद-भरजाद दोष-गुन गति चित चख न चही ।
 तुलसी भरत ममुक्ति सुनि रागी राम-सनेह सही ॥३॥

विनय-पत्रिका

१

राग भैरव

राम जपु, राम जपु, राम जपु वावरे ।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥१॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे ।
प्रसे कलि-रोग जोग-संजम-ममाधि रे ॥२॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, वाम रे ।
राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे ॥३॥
जग नभ-त्राटिका रही है फलि फूलि रे ।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥४॥
राम-नाम-छाडि जो भरोसो करै और रे ।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे ॥५॥

२

जागु, जागु, जीव जड़ ! जोहै जग-जामिनी ।
देह-गंह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥१॥
सोवत सपनेहँ सहै संसृति-संताप रे ।
वृड्यो मृग-चारि खायो जेवरी को साँप रे ॥२॥
कहै वेद-चुध, तू तो वृष्णि मनमार्हि रे ।
दोष-दुख सपनेके जागे ही पै जाहि रे ॥३॥
तुलसी जागेते जाय ताप तिहूँ ताय रे ।
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥४॥

३

राग टोड़ी

मोहजनित मल लाग विविध विधि कोटिहु जतन न जाई ।
 जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ॥१॥
 नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय सँग लागे ।
 हृदय मलिन वासना-भान-भद, जीव सहज सुख त्यागे ॥२॥
 परनिदा सुनि श्रवण मलिन भे, वचन दोष पर गाये ।
 सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराये ॥३॥
 तुलसिदास व्रत-दान, ग्यान-तप, सुद्धिहेतु श्रुति गावै ।
 राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥४॥

४

राग घनाश्री

सुनु मन मूढ सिखावन मेरो ।
 हरि-पद-विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ । यह समुझ सवेरो ॥१॥
 विद्युरे ससि-रवि मन-नैननिते, पावत दुख बहुतेरो ।
 भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महुँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥२॥
 जद्यपि अति पुनीता सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
 तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, ग्रहियो ताहु केरो ॥३॥
 झुटै न विपति भजे विनु रघुपति, श्रुति संदेहु निवेरो ।
 तुलसिदास सब आस छाँडि करि, होहु रामको चेरो ॥४॥

५

ऐसी मूढ़ता या मनकी ।
 परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकनकी ॥१॥

धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृपित जानि मति घनकी ।
 नहिं तहँ सीतलता न वारि, पुनि हानि होति लोचनकी ॥२॥
 ज्यों गच-काँच विलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी ।
 दूटत अति आतुर अहार बस, छति विसारि आननकी ॥३॥
 कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि ! जानत हौ गति जनकी ।
 तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी ॥४॥

६

अबलौ नसानी, अब न नसैहौं ।
 राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौ ॥१॥
 पायेउँ नाम चारु वितामनि, उर कर तें न खसैहौ ।
 स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौ ॥२॥
 परवस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस हौ न हँसैहौं ।
 मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥३॥

७

राग बिहाग, बिलावल

केसव ! कहि न जाइ का कहिये ।

देखत तव रचना विचित्र हरि ! समुक्ति मनहिं मन रहिये ॥१॥
 सून्य भीतिपर चित्र, रंग नहिं, तनु विनु लिखा चितेरे ।
 धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥२॥
 रविकर-नीर वसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
 यदन-हीन सो प्रसै चराचर, पान करन जं जाहीं ॥३॥
 कोउ कह सत्य, भूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
 तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥४॥

८

माधव ! मोह-फाँस क्यों टूटै ।

बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यतर प्रन्थि न छूटै ॥१॥
 घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै ।
 ईधन अनल लगाय ललपसत, औटत नास न पावै ॥२॥
 तरु-कोटर महुँ वस विहंग तरु काटे मरै न जैसे ।
 साधन करिय विचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिँ तैसे ॥३॥
 अतर मलिन विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।
 मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि विविध विधि मारे ॥४॥
 तुलसिदास हरि-गुरु-करुना विनु विमल विवेक न होई ।
 विनु विवेक ससार-घोर-निधि पार न पावै कोई ॥५॥

९

हे हरि ! कवन दोष तोहिँ दीजै ।

जोहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति, सोइ निसि-बासर कीजै ॥१॥
 जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परव यहि लागे ।
 तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यो, फिरत विषय अनुरागे ॥२॥
 भूत-द्रोह कृत मोह-वस्य हित आपन में न विचारो ।
 मद-मत्सर-अभिमान ग्यान रिपु, इन महुँ रहनि अपारो ॥३॥
 वेद-पुरान सुनत समुक्त रघुनाथ सकल जगव्यापी ।
 वेधत नहिँ श्रीसूड वेनु इव, सारहीन मन पापी ॥४॥
 मैं अपराध-सिंधु करुनाकर । जानत अतरजामी ।
 तुलामिदास भव-च्याल-प्रसित नत्र सरन उरग-रिपु गामी ॥५॥

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ।
 देखत, सुनत, विचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥१॥
 भगति-ग्यान वैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।
 कोउ भल कहउ, देउ कछु, असि वासना न उरते जाई ॥२॥
 जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।
 निज करनी विपरीत देखि मोहिं समुक्ति महाभय लागै ॥३॥
 जद्यपि भग्न-मनोरथ विधिवस, सुख इच्छत, दुख पावै ।
 चित्रकार करहीन जथा स्वारथ विनु चित्र बनावै ॥४॥
 हृषीकेश सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे ।
 तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख, हरे वानहिं प्रभु तोरे ॥५॥

हे हरि ! यह भ्रमकी अधिकारि ।
 देखत, सुनत, कहत, समुक्त संसय-सदेह न जाई ॥१॥
 जो जग मृपा ताप-त्रय-अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।
 कहि न जाय मृगवारि सत्य, भ्रम ते दुख होइ विसेखे ॥२॥
 सुभग सेज सोचत सपने, वारिधि वृद्धत भय लागै ।
 कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जव लागि आपु न जागै ॥३॥
 अनधिचार रमनीच सदा, संसार भयंकर भारी ।
 सम-संतोष-दया-विवेक तें, व्यवहारी सुखकारी ॥४॥
 तुलसिदास सव विधि प्रपञ्च जग, जद्यपि भूठ श्रुति गावै ।
 रघुपति-भगति सत-संगति विनु, को भव-त्रास नसावै ॥५॥

१२

राग नट

हे प्रभु ! मेरोई सब रोसु ।

सीलसिधु कृपालु नाथ अनाथ आरत-पोसु ॥१॥

वेप वचन विराग मन अघ अवगुननिको कोसु ।

राम प्रीति प्रतीति पोली, कपट-करतव ठोसु ॥२॥

राग-रग कुसंग ही सों, साधु सगति रोसु ।

चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥३॥

सभु-सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।

दभहू कलि नाम कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥४॥

मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।

रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम परितोसु ॥५॥

१३

राग सोरठ

रघुपति-भगति करत कठिनाई ।

कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि वनि आई ॥१॥

जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।

सफरी मनमुख जल-प्रवाह सुरसरो वदै गज भारी ॥२॥

ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बलतें न कोउ विलगावै ।

अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, विनु प्रयास ही पावै ॥३॥

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी ।

मोड हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिमय द्वैत-त्रियोगी ॥४॥

मोक मोह भय हरप द्विस निमि देस-काल तहँ नाहीं ।

तुलसिदास यहि दसाहीन ससय निरमूल न जाहीं ॥५॥

१४

जोपै राम-चरन-रति होती ।

तौ कत त्रिविध सूल निसिवासर सहते विपति निसोती ॥१॥
 जो सतोप-सुधा निमिवासर सपनहुँ कवहुँक पावै ।
 तौ कत विषय विलोकि भूँठ जल मन-कुरंग ज्यों धावै ॥२॥
 जो श्रीपति-महिमा विचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
 तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥३॥
 जं लोलुप भये दास आसके ते सबहीके चरे ।
 प्रभु-विश्राम आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥४॥
 नहिं एकौ आचरन भजनको, विनय करत हौ ताते ।
 कीजै कृपा दास तुलसी पर, नाथ नामके नाते ॥५॥

१५

रुवहुँक हौ यहि रहनि रहौगो ।

श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपाते संत-सुभाव गहौगो ॥१॥
 जथा लाभ सतोप सदा, काहू सो कछु न चहौगो ।
 पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम वचन नेम निवहौगो ॥२॥
 परुष वचन अति दुमह श्रवन सुनि नेहि पावक न दहौगो ।
 विगत मान, मम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौगो ॥३॥
 परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौगो ।
 तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भगति लहौगो ॥४॥

१६

राम विलासल

कहो जाडे, कासो कहौ, कौन सुनै दीनकी ।

त्रिभुवन तुही गति नव अंगहीनकी ॥१॥

जग जगदीस घर धरनि घनेरे हैं ।
 निराधारके अधार गुनगन तेरे हैं ॥२॥
 गजराज-काज खगराज तजि धायो को ।
 मोसे दोम कोस पोसे, तोसे माय जायो को ॥३॥
 मोसे कूर कायर कुपूत कौडी आधके ।
 किये बहुमोल तै करैया गीध-आधके ॥४॥
 तुलसीकी तेरे ही बनाये, बलि, बनैगी ।
 प्रभुकी विलव-अव दोष-दुख जनैगी ॥५॥

१७

राग आसावरी

ताहि तें आयो सरन सवेरे ।

ग्यान विराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ । न मेरें ॥१॥
 लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रैन दिन घेरें ।
 तिनहिँ मिले मन भयो कुपथ-रत, फिरै तिहारेहि फेरें ॥२॥
 दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद कहत सत श्रुति टेरें ।
 जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो, हरि तुम्हरेहि प्रेरें ? ॥३॥
 विष पियूप सम करहु अग्नि हिम, तारि सकहु विनु बेरें ।
 तुम मम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरें ॥४॥
 यह जिय जानि रहौ मत्र तजि रघुवीर भरोमे तेरें ।
 तुलमिदाम यह विपति त्रागुरौ तुम्हहिँ सों बनै निबेरें ॥५॥

१८

राग गौरी

जो पै जानकिनाथ सो नातो नहु न नीच ।

ग्यारथ परमारथ कहा, कलि कुटिल विगोयो बीच ॥१॥

धरम धरन आश्रमनिके पैयत पोधिही: पुरान ।
 करतव विनु वेप देखिये, ज्यों सरीर विनु प्रान ॥२॥
 वेद-विहित-साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि ।
 राम-प्रेम विनु जानिवो जैमे सर-सरिता विनु वारि ॥३॥
 नाना पथ निरवान के, नाना विधान बहु भौति ।
 तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-नाम दिन-राति ॥४॥

१६

राग भैरवी

मन पछितैहै अवसर वीते ।

दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते ॥१॥
 सहस्रग्राहु, दसवदन आदि नृप वचे न काल बलीते ।
 हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥२॥
 सुत-वनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।
 अंतहु तोटि तजैगे पामर । तू न तजै अवही ते ॥३॥
 अब नाथहि अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरामा जी ते ।
 चुभै न काम अगिनि तुलसी कहँ, विषय-भोग बहु घी ते ॥४॥

२०

राग ऋषयाण

ऐसी कौन प्रभुकी रीति ?

विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥१॥
 गर्द मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ ।
 मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥२॥

काममोहित गोपिकनिपर कृपा, अतुलित कीन्ह ।
 जगत-पिता विरचि जिन्हके चरनकी रज लीन्ह ॥३॥
 नेमतेँ सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि ।
 क्रियो लीन सु आपमे हरि राज-सभा मँभारि ॥४॥
 व्याध चित है चरन मारयो मूढमति मृग जानि ।
 सो सदेह स्वलोक पङ्गो प्रगट करि निज वानि ॥५॥
 कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ ।
 प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥६॥

२१

आपनो कवहुँ करि जानिहौ ।

राम गरीबनिवाज राजमनि, विरद-लाज उर आनिहौ ॥१॥
 मील-सिंधु, सुन्दर, सब लायक, समरथ, सदगुन-खानि हौ ।
 पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु, प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ ॥२॥
 वेद-पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन-दानि हौ ।
 कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी वार विसारे वानि हौ ॥३॥
 आरत-दीन-अनाथनिके हित मानत लौकिक कानि हौ ।
 हे परिनाम भलो तुलसीको सरनागत-भय भानि हौ ॥४॥

२२

मोहि मूढ मन ब्रह्म त्रिगोयो ।

याके लिये सुनहु करुनामय,

मैं जग जनमि-जनमि दुग्न रोयो ॥१॥

सीतल मधुर पियूष सहज सुख,
 निकटहि रहत दूर जन खोयो ।
 बहु भाँतिन स्रम करत मोहवस,
 वृथहि मंदमति वारि विलोयो ॥२॥
 करम-कीच जिय जानि, सानि चित,
 चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
 तृपावंत सुरसरि विहाय सठ,
 फिरि-फिरि विकल अकास निचोयो ॥३॥
 तुलसिदास प्रभु ! कृपा करहु अत्र,
 मैं निज दोष कछू नहिं गोयो ।
 दासत ही गइ वीति निसा सत्र,
 कवहुँ न नाथ ! नीद भरि सोयो ॥४॥

मानस-रूपक

चौपाई

समुप्रसाद सुमति हिय हुलसी । राम-चरित-मानस कवि तुलसी
करइ मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू । वेद-पुरान उदधि घन साधू
वरपहिं राम सुजस वर वारी । मधुर मनोहर मंगलकारी
लीला सगुन जो कहहिं वखानी । सोइ स्वच्छता करै मल हानी
पेम भगति जो वरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई
मो जल सुकृत सालि हित होई । राम-भगत-जन जीवन सोई
मेधा महिगत सो जल पावन । सकलि स्रवन मग चलेउ सुहावन
भरेउ सुमानस सुयल थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना

दोहा

सुठि सुदर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि ।

तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥

चौपाई

सप्र प्रवध सुभग सोपाना । ज्ञाननयन निरखत मन माना
रघुपति-महिमा अगुन अवाधा । वरनत्र सोइ वर वारि अगाधा
राममीय-जम सलिल सुधासम । उपमा वीचि-विलास मनोरम
पुराणि मयन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई
छद मोरठा सुदर दोहा । सोइ बहुरग कमलकुल सोहा
अरथ अनप सुभाप मुभामा । सोइ पराग मकरंद सुवासा

सुकृतपुंज मंजुल अलिमाला । ग्यान-विराग-विचार मराला
 धुनि अवरैय कवित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहु भौंती
 अरथ धरम कामादिक चारी । कहव ग्यान विग्यान विचारी
 नव रस जप तप जोग विरागा । ते सव जलचर चारु तड़ागा
 सुकृति साधु नाम गुन गाना । ते विचित्र जल विहंग समाना
 संत-सभा चहुँ दिमि अँवराई । अद्धा रितु वसंत सम गाई
 भगति निरूपन विविध विधाना । छमा दया द्रुम लता विताना
 सम जम नियम फूल फल ग्याना । हरिपद रस वर वेद वखाना
 औरी कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहु वरन विहंगा

दोहा

पुलक वाटिका वाग वन सुख सुविहग विहारु ।
 माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ॥

चौपाई

जे गावहि यह चरित सँभारे । तेइ एहि ताल चतुर स्ववारे
 सदा सुनहिं सावर नर नारी । तेइ सुर वर मानस-अधिकारी
 प्रतिखल जे विपई वक कागा । एहि सर निकट न जाहि अभागा
 संवुक भेक सेवार समाना । इहाँ न विषय कथा रस नाना
 तेहि कारन आवत टिय हारे । कामी काक बलाक विचारे
 आवत एहि सर अति कठिनाई । रामकृपा विनु आइ न जाई
 कठिन कुसंग कुपंथ कराला । तिन्हके वचन घाघ हरि द्याला
 गृहकारज नाना जंजाला । तेइ अति दुर्गम सैल विसाला
 घन बहु विषम मोह मद माना । नदी कुतर्क भयंकर नाना

दोहरा

जे श्रद्धा-संवल-रहित नहि संतन्ह कर साथ ।
तिन्ह कहै मानस अगम अति जिनहि न प्रिय रघुनाथ ॥

चौपाई

जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहि नींद जुड़ाई होई
जडता जाड विषम उर लागा । गयहु न मज्जन पाव अभागा
करि न जाइ सर मज्जन पाना । फिरि आवै समेत अभिमाना
जौ बहोरि कोउ पूछन आवा । सरनिंदा करि ताहि बुभावा
सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही । राम सुकृपा विलोकहिं जेही
सोइ साठर सर मज्जनु करई । महाघोर त्रयताप न जरई
ते नर यह सर तजहि न काऊ । जिन्ह के रामचरन भल भाऊ
जो नहाइ चह एह सर भाई । सो सतसंग करौ मन लाई
अस मानस मानस-चख चाही । भइ कविवुद्धि विमल अवगाही
भएउ हृदय आनद उछाहू । उमगेउ प्रेम-प्रमोद-प्रवाहू
चली सुभग कविता सरिता सो । राम विमल जस जलभरिता सो
सरजू नाम सुमंगलमूला । लोक-वेद-मत मज्जुल कूला
नदी पुनीत सुमानस-नदिनि । कलि-मल-त्रिन-तरु-मूल-निकंदिनि

दोहा

श्रोता त्रिविध समाज पुर प्राम नगर दुहुँ कूल ।
मंतसभा अनुपम अवध मकल सुमंगल मूल ॥

चौपाई

रामभगति सुर सरितहि जाई । मिली सुकीरति सरजु सुहाई
मानुज राम-समर-जसु पावन । मिलेउ महानदु सोन सुहावन

जुग विच भगति देव-धुनि-धारा । सोहति सहित सुविरति विचारा
 त्रिविध-ताप-त्रासक तिमुहानी । रामसरूप सिंधु समुहानी
 मानस मूल मिली सुरसरिही । सुनत सुजनमन पावन करिही
 विच विच कथा विचित्र विभागा । जनु सरितीर तीर वनु वागा
 उमा-महेस-विवाह-वराती । ते जलचर अगनित बहु भौंती
 रघुवर - जनम - अनद-वधाई । भर्वर तरंग मनोहरताई

दोहा

वालचरित चहुँ वधु के वनज विपुल बहुरंग ।
 नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर वारिविहंग ॥

चौपाई

सीय-स्वयंवर-कथा सुहाई । सरित मुहावनि सो छवि छाई
 नदी नाव पट्ट प्रश्न अनंका । कंवट कुसल उतर सविवेका
 सुनि अनुकथन परसपर होई । पथिकसमाज सोह सरि सोई
 घोर धार भृगुनाथ-रिसानी । घाट सुबद्ध राम-वर-वानी
 सानुज-राम-विवाह-उझाहू । सो सुभ उमग सुखद सब काहू
 कहत सुनत हरपहिं पुलकाहीं । ते सुकृती मन मुदित नहाहीं
 रामतिलक-हित मंगल साजा । परव जोग जनु जुरे समाना
 फाई छुमति केकई केरी । परी जासु फल विपति घनेरी

दोहा

समन अमित उतपात सब भरतचरित जपजाग ।
 कालि अघ रत्न-अवगुन-कथन ते जलमल वक काग ॥

चौपाई

फीरति सरित छहै रितु हरी । समय मुहावनि पावनि भूरी ।

५—अधिक उदोत-और भी शोभा पाता है । हार बेलि-बेला के फूलों का हार ।

६—साधु-सज्जन । सुमति-अच्छी बुद्धि वाले । सुचि सरल सुभाव-पवित्र और सीधे स्वभाव वाले । नीतिरत-न्याय में लीन, न्यायी । काम...पाव-ये गुण कामदेव में कहाँ है ? अर्थात् काम न तो साधु प्रकृति के हैं, न सुशील, न पवित्र और सरल स्वभाव के हैं और न ही न्यायपरायण हैं, वरन् इसके विपरीत गुणों वाले हैं ।

७—रामसरूप-राम का रूप, सौन्दर्य । समसरि-बराबरी । भवकूप-संसार रूपी कुआँ । परै भवकूप-संसार रूपी कुएँ में पड़ता है, दुःख का भागी बनेगा ।

८—चढ़त दसा-उन्नत दशा में राम की वीरोचित भृकुटा सटा चढ़ी ही रहती हैं जबकि घनुप अन्त में (उतर जात) शिथिल पड़ जाता है, ढीला हो जाता है । करकस-कर्कश, कठोर । कयहूँ-कभी भी । मैं कभी भी नहीं कहूँगा कि राम की भवें कठोर घनुप के समान हैं ।

पृष्ठ २—

६—इस छन्द में उस समय का वर्णन है जब कौशिक ऋषि के साथ रामलक्ष्मण जनकपुरी में सीता-स्वयंवर देखने गये थे और जब रामचन्द्र जी स्वयंवर-मंच पर पधारे थे, उस समय उनके अतुल तेज का प्रभाव इस पद में गुसाईं जी न दर्शाया है । यहाँ राम जी के तेज की तुलना सूर्य से और अन्य राजाओं की चन्द्र से की गई है ।

नित्य-नेमकृत-सन्ध्यावन्दनादि दैनिक कर्म करके। अरुणोदय-सूर्योदय से पूर्व की जालिमा का उदय। निसा... मुख-राजाओं के चन्द्र रूपी मुख। भये मलीन-आभाहीन हो गये जैसे सूर्योदय से चन्द्र प्रकाशहीन हो जाता है।

१०—धनुष की कठोरता और रामचन्द्र जी की सुकुमारता देखकर स्त्रियों परस्पर एक-दूसरी से कहती हैं कि भगवान् शिव से ही प्रार्थना करिए कि वे राम जी को ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे वे ऐसे धनुष को तोड़ने में समर्थ हो सकें। फमठपीठ-कद्युष की पीठ के समान कठोर। अँदेस-अँदेशा है, शंका है कि राम इसे तोड़ सकेंगे। कहव-कहिए, प्रार्थना कीजिए। तमकि-तमक कर, तेज़ी से। तोरिहि-तोड़ डालें। तमकि ताहि ' ' तोरिहि-यह प्रार्थना-वचन है।

११—नृप-राजा जनक। निरास भये—अन्य राजाओं से धनुर्भंग न किये जाने के कारण प्रजा को उदास देख राजा जनक भी उदास हो गये। ह्रास-सब का दुःख।

निरखत-यह राजा के साथ भी जगाया जा सकता है कि वे प्रजा को उदास देखकर, अथवा प्रजा के साथ भी प्रयुक्त हो सकता है कि वह राजा को उदास देख निराश हो गईं।

१२—यह पद विवाहानन्तर अयोध्या लौटने पर अन्तःपुर की स्त्रियों नई युवकों से कहती हैं।

नवला-नई। सरग-आकाश। अनुहारि-ममान; यहि अनुहारि-इन मुखों के समान। इस पद का भाव यह है कि महिला-वर्ग छक पर दर्शन करना चाहता है, अतः कहा

गया है कि जैसे आकाश में चन्द्र सभी को दर्शन देता है वैसे ही तुम दर्शन देकर सबको प्रसन्न करो ।

१३—एक प्रौढ़ा सखी अन्य सखियों से कहती है । वह राम और सीता के लिए एकान्त बनाना चाहती है अतः उनके उनींद होने का पहाना बनाकर सखियों को वहाँ से चले जाने का संकेत वरती है । उनींदे-नींद से भरे हुए । मिसकरि-पहाना बनाकर ।

१४—यह उस समय का प्रसंग है जब राम और लक्ष्मण सीता के साथ वन में चले जा रहे हैं । उस समय मार्ग में पड़ने वाले गाँवों के निवासी उनके अपूर्व सौन्दर्य से मुग्ध हो अपने-अपने भाव प्रकट कर रहे हैं । नर-नारायण-नर और नारायण (लक्ष्मण नर और राम नारायण हैं) । हरि-विष्णु । हर-शिव । मधु-वसंत । मनसिज-कामदेव । विहरत-बिहार कर रहे हैं । लोग इस प्रकार इन दोनों के चारों ओर भिन्न भिन्न कल्पनाएँ कर रहे हैं ।

१५—ये वचन वेधट के हैं । जाँनि पग साँच-मैं सच कहता हूँ कि आप (नाच पर चढ़ने के लिए) गंगा में पाँव न डालें, पैर न रखें । मेरी नाव में पैर न धरें । निगानाँग-बिहृल्ल नगा, नगघदङ्ग । नया नाच-नित्य नाच नचायेगी । टिप्पणी—यहाँ अहल्या-उद्धार की ओर संकेत है । उस शिला के समान मेरी नाव भी एक स्त्री का रूप धारण कर लेगी तथा दूसरी स्त्री को देख मेरी स्त्री मुझे नित्य ही परेशान करती रहेगी । वेधट का प्रसंग तुलसी की अत्यन्त प्रिय था । तुलसी की लिए कवितावली 'एहघाटठे' इत्यादि ।

१६—गंगा पार करके जय रामचन्द्र जी आगे बढ़ते हैं तो मार्ग में प्राम-बधूटियाँ रामचन्द्र जी के सौन्दर्य पर मुग्घ होती हैं। उनमें जय एक उनके चरणों की तुलना कमल से करती है तो दूसरी उनके कथन को काटती हुई कहती है।
कंटकित-शार्ङ्गों में युक्त, कंटीला। पाई—(राम जी के)
चरण। यह—ये चरण। दरसाई—दिखाई देते हैं।

१७—यह भी प्रामस्त्रियों के ही उद्गार हैं। हरि-विष्णु।
द्वेभुजकर—दो भुजाओं वाला (मनुष्य-रूप में)। दूसर
शेष—दमरा शेष नाग।

१८—जय पचवटी में शूर्पनखा समझाने बुझाने पर भी नहीं मानो तो श्री रामचन्द्र जी ने उसके नाक और कान काटने का संकेत करके उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया।

घेद—ध्रुति, कान। प्रकास—आकाश, स्वर्ग, नाक।

१९—जिस समय सीता जी के आग्रहवश रामचन्द्र जी स्वर्ण-
मृग (मारीच) के पीछे तीर फमान लिये जाते हैं उस समय को उनकी मुद्रा गोस्वामी जी के हृदय में सदा वास करती है।
जटामुकुट—जटाएँ ही मुकुट हैं। कर—हाथों में। सग मरीच—
मारीच के साथ घर्षात् उसका पीछा करते हुए। चितवनि-
दखने का टग। कनखियनु—तिरछी टाँट से। राम तिरछी
एटि से (मुँह घुमा कर) सीता का और देखते भी जाते हैं
घोर मृग के पीछे भी चले जा रहे हैं।

खेरियनु बीच बसति—सीता जी के हृदय में अथवा तुलसी
के हृदय में वही चितवन बस रही है।

पृष्ठ ३—

२०—जय राम मारीच को मार कर लौटते हैं तो कुटिया में सीता जी को न देख लक्ष्मण से पूछते हैं ।

कनक-सलाक-स्वर्ण की शलाका (सलाई) सोने की सलाई के समान तन्वगी एवं उज्ज्वल गौरवर्णा ।

कला-ससि-शशि-कला, चन्द्र-किरण (के समान हृदय को शीतल करने वाली) । दीप-सिखाउ-दीपक की शिखा (उजाला देने वाली) । तारा-आँख की पुतली (जैसी) ।

२१—(इस पद के स्पष्टार्थ के लिए देखिए 'तुलसी के चार-दल, पृष्ठ ४६)

सीय-वरन सम केतिक-केतकी सीता के वर्ण (रंग) के समान वर्ण वाली है । अतिहिय हारि-हृदय से हार मान ली । किहेसि-किया । भँवर कर-भौरों का । हरवा-हार । हृदय विदारि-हृदय को फाड़ कर (हार 'हीनता' के दुःख में ही उसका हृदय विदीर्य हो गया, यही अब उचित प्रतीत होता है) ।

२२—इस पद में हनुमान जी राम-लक्ष्मण का परिचय सुग्रीव से करा रहे हैं ।

इनतें-इनमें, इनके कारण । सित-श्वेत, उज्ज्वल । अति अभिराम-अति सुन्दर ।

२३—कुजन-पाल-पुरे लोगों का पालन करने वाला, अथवा यानरों का पालन करने वाला । गुन-वर्जित-निर्गुण । सत्व, रजस्, तमस् तानों गुणों से अलग । अकुल-कुलरहित,

जिसका अपना कोई विशेष कुल नहीं। अनाथ-स्वामिरहित,
असहाय, स्वाधिन। राउर-आपकी। कस-कैसे।
गुनगाय-गुण-वर्णन।

यह पद सुप्रीव जी श्रीरामचन्द्र से कहते हैं।

२४—इस पद में सीता जी अपनी विरह-दशा का वर्णन करती हैं। वे जल जाना चाहती हैं और ज्यों ही विरहाग्नि अधिक प्रज्वलित होती है और सीता जी को यह भान होता है कि अथ भस्म हो जाऊँगी तथा दुःख से मुक्त हो जाऊँगी त्यों ही विरह-व्यथा की तीव्रता के कारण दोनों नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है और हृदय के कुछ हलके हो जाने से कुछ शान्ति आ जाती है। इसी दशा का वर्णन सीता जी ने उक्त छन्द में किया है। इस पद में गोस्वामी जी ने कितना स्वाभाविक एवं प्राकृतिक चित्रण किया है! अर्थिकाई-तेज होती है। वैरिनि-शत्रु, क्योंकि ये आँसू गहाकर उस विरह-अग्नि को कुछ समय के लिए शान्त कर देती हैं, फलतः शत्रु का सा काम करती हैं।

२५—इस पद की प्रथम पंक्ति त्रिजटा की कही हुई प्रतीत होती है। विरह-दशा में सीता जी के मुँह से जैसे अकस्मात् ये वचन निकल आये हों, “धूप कितनी तेज है और कष्टदायक है।” इस पर त्रिजटा ने प्रथम पंक्ति द्वारा सीता को बतलाया कि तुम भ्रम में हो। यह तो रात है, चाँदनी फैल रही है, धूप नहीं है। दूसरी पंक्ति में सीता जी का उत्तर है।

दहकु न-भ्रम में न पड़ो। रजियरिया-चाँदनी। घाम-धूप

पृष्ठ ३—

२०—जय राम मारीच को मार कर लौटते हैं तो कुटिया में सीता जी को न देख लक्ष्मण से पूछते हैं ।

कनक-सलाक-स्वर्ण की शलाका (सलाई) सोने की सलाई के समान तन्वंगी एवं उज्ज्वल गौरवर्णा ।

कला-ससि-शशि कला, चन्द्र-किरण (के समान हृदय को शीतल करने वाली) । दीप-सिखाउ-दीपक की शिखा (उजाला देने वाली) । तारा-श्रॉख की पुतली (जैसी) ।

२१—(इस पद के स्पष्टार्थ के लिए देखिए 'तुलसी के चार-दल, पृष्ठ ४६)

सीय-वरन सम केतिक-केतकी सीता के वर्ण (रंग) के समान वर्ण वाली है । अतिहिय हारि-हृदय से हार मान ली । किहेसि-किया । भँवर कर-भौरों का । हरवा-हार । हृदय विदारि-हृदय को फाड़ कर (पार 'हीनता' के दुःख से ही उसका हृदय विदीर्ण हो गया, यही अब उचित प्रतीत होता है) ।

२२—इस पद में हनुमान जी राम-लक्ष्मण का परिचय सुग्रीव से करा रहे हैं ।

इनतें-इनसे, इनके कारण । सित-श्वेत, उज्ज्वल । अति अभिराम-अति सुन्दर ।

२३—कुजन-पाल-युरे लोगों का पालन करने वाला, अथवा यानरों का पालन करने वाला । गुन-वर्जित-निर्गुण । सख, रजस, तमस् तीनों गुणों में अन्धग । अकुल-कुलरहित,

जिसका अपना कोई विशेष कुल नहीं। अनाथ-स्वामिरहित,
असहाय, स्वार्थीन। राउर-आपकी। कस-कैसे।
गुनगाथ-गुण-वर्णन।

यह पद सुग्रीव जी श्रीरामचन्द्र से कहते हैं।

२४—इस पद में सीता जी अपनी विरह-दशा का वर्णन
करती हैं। वे जल जाना चाहती हैं और ज्यों ही विरहाग्नि
अधिक प्रज्वलित होती है और सीता जी को यह भान होता
है कि अथ भस्म हो जाऊँगी तथा दुःख से मुक्त हो जाऊँगी
यों ही विरह-व्यथा की तीव्रता के कारण दोनों नेत्रों से आँसुओं
की झड़ी लग जाती है और हृदय के कुछ हलके हो जाने से
कुछ शान्ति आ जाती है। इसी दशा का वर्णन सीता जी ने
उक्त छन्द में किया है। इस पद में गोस्वामी जी ने कितना
स्वाभाविक एवं प्राकृतिक चित्रण किया है ! अधिकाई-तेज़
होती है। वैरिनि-शत्रु; क्योंकि ये आँसू बहाकर उस विरह-
अग्नि को कुछ समय के लिए शान्त कर देती हैं, फलतः शत्रु
का सा काम करती हैं।

२५—इस पद की प्रथम पंक्ति त्रिजटा की कही हुई प्रतीत होती
है। विरह-दशा में सीता जी के मुँह से जैसे अकस्मात् ये
वचन निकल आये हों, “धूप कितनी तेज़ है और कष्टदायक
है।” इस पर त्रिजटा ने प्रथम पंक्ति द्वारा सीता को बतलाया
कि तुम भ्रम में हो। यह तो रात है, चाँदनी फैल रही है,
धूप नहीं है। दूसरी पंक्ति में सीता जी का उत्तर है।

दृष्टु न-भ्रम में न पड़ो। उजियरिया-चाँदनी। घाम-धूप

वाधक-विघ्न ढालने वाला । पाप-प्रमादादि दुर्गुण ।
 ३४—सत्र कहँ-सब से । परिणाम-थंत, फल । जनम
 जनम-प्रत्येक जन्म में । तुलसी रामपद-अनुराग (राम-
 भक्ति) को मोक्ष से भी प्रधानता देते हैं । देहु-वरदान
 दीजिए ।

तुलना कीजिये—प्रेम की अनन्यता—दोहा ?

प्रेम की अनन्यता

पृष्ठ ५—

दोहा १—चातक का प्रेम तुलसी की दृष्टि में अनन्य भक्ति का प्रतीक है । चातक-पपीहा । घनस्याम-काले मेघ । चातक तुलसीदास-ऐसे राम रूपी काले मेघ के प्रेम में तुलसीदास चातक है, अर्थात् जैसा अनन्य प्रेम मेघ के प्रति चातक का होता है वैसे ही श्यामघन राम के प्रति तुलसी का है ।

२—घन-मेघ, राम । वरपै-वर्षा करे, कृपा-दृष्टि करें । जौ भरि उदास-चाहे जन्म-भर उपेक्षा करते रहो (कृपा न करो), न थरसो । तऊ-तो भी । तिहारी-तुम्हारी ।

३—इस पद में तुलसी अपना सिद्धान्त बतलाते हैं । उनके मत में तो चातक स्वाति की घूँद को भी नहीं पीता, यह धारणा कि वह स्वाति नक्षत्र की ही घूँद को पीता है । तुलसी के त्रिचार में यह कल्पनामात्र ही है, प्रेमी की आन (प्रतिष्ठा) तो इसी में है कि उनकी प्रेम-पिपासा सदा बढ़ती ही रहे । पानि-जल । वाढ़ती भली-बढ़ती हुई ही अच्छी है । घटें-

(प्यास के) घटने से । घटैगी आनि-आन (प्रतिष्ठा) ही घट जायगी ।

४—रसना-जिह्वा । लट्टी-थक गई, ढीली पड़ गई । तृषा-प्यास से, प्यास के मारे । सूखिगे-सूख गये । प्रेमको-प्रेम का । नूतन-नया । रुचि-सुन्दरता । रंग-प्रेम का रंग, प्रेम-प्रगाढ़ता ।

५—चढ़त न-आता ही नहीं । कवहुँ-कभी भी । प्रिय पयोद-प्यारे जलद व मेष । प्रेम-पयोधि-प्रेम के सागर की । ताते-हस कारण । नाप न जोप-माप-तोल हो ही नहीं सकती, प्रेमसागर अथाह होता है ।

६—वरपि-घरस कर । परुप पाहन-कठोर पथर, कठोर ओले । टुकटुक-टुकड़े टुकड़े । परी न चाहिए- नहीं पढ़नी चाहिए; प्रेमपण निबाहने में (भूल-चूक) नहीं करनी चाहिए । भावार्थ यह है कि कठिन आपत्ति पढ़ने पर भी चतुर प्रेमी को प्रेम-निर्वाह में भूल नहीं करनी चाहिए ।

७—उपल वरपि-पथर (ओले) यरसा कर । गरजत-गरजता है । तरजि-क्रोध दिखला कर । कुलिस-वज्र, बिजली । चितवकि चातक-पपीहा क्या देखता है ? दूसरी ओर— (मेष के अतिरिक्त) अन्य की ओर, यही उसके प्रेम की अनन्यता है ।

८—पवि-वज्र, दामिनी-बिजली (वज्र को कड़का कर और बिजली को चमका कर) झरि-झड़ी लगाकर । झकोर-झाँधी के झकोले देकर । खरि खीज-अच्छी तरह से क्रोध दिखाता है । रोष न-चातक को क्रोध नहीं आता ।

रागाहि रीम्कि-अनुराग में प्रसन्न होकर, उल्टे वह उसका प्रेम देखकर और भी रीक जाता है ।

६—मान राखियो-आत्मसम्मान की रक्षा करना । माँगियो- (प्रिय से) माँगना, अभ्यर्थना करना । पिय नेहु-(आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए और भीख माँगते हुए) प्रिय से नित्य नया प्रेम करना, प्रेम का नित्य नया (ताज़ा) होना । तीनिउ' फ़र्रै-ऊपर कही हुई तीनों बातें तभी शोभा देती हैं ।

चातकमत-चातक के सिद्धान्त का पालन किया जाय ।

पृष्ठ ६—

१०—मान * प्रेम-मान (आत्मसम्मान) और प्रेम दोनों को साथ निगाहना । चक्र' 'स्वातिहू-स्वाती नक्षत्र की चूँद भी यदि टेढ़ी गिरती है, सीधी चातक की चंचु में आकर नहीं गिरती । निदरि-उसका निरादर करके अर्थात् टेढ़ी चूँद को अस्वीकार करके । निवाहृत नेम-नियम का निर्वाह करता है प्रेम के व्रत का ही पालन करता है, किसी दूसरे स्वाती नक्षत्र की चूँद को प्रतीक्षा में 'पिय' 'पिय' की रट लगाये रखता है । चातक का नियम यह है कि वह सदा मुँह ऊपर किये सीधा मेघ की ओर निहारता रहता है, यही उसका मान है यही मर्यादा । न तो चोंच को टेढ़ी करेगा न टेढ़ी चूँद को ग्रहण करेगा । वह ऐसा भिखारी नहीं कि दानी जैसे देवे वैसे ही ग्रहण कर ले । यह तो सच्चा प्रेमी है । अतः पिय से भी अपनी मर्यादा की रक्षा करवाना चाहता है । वह प्रेमी है, भिखरू नहीं ।

११—चातक माँगने एक—चातक भी (अपनी कोटि का) एक ही माँगने वाला है । एक दानि—मेघ भी एक ही दानी है, उस जैसा भी कोई दूसरा नहीं । देत—पानि—देने वाला भी इतना देता है कि पृथ्वी के सभी पात्र (सरोवर आदि) भर जाते हैं पर चातक केवल एक ही घूँट लेता है । दानी भी ऐसा कि अपरिमित दान देने वाला है और लेने वाला भी अपनी लग्न का निराला ही है—एक घूँट की प्यास है एक ही लेगा, अधिक नहीं ।

तुलना कीजिए—ढोंहा २५

घूँटक—घूँट एक, एक घूँट ही । पानि—पानी, जल ।

१२—जस—यश, कीर्ति । चातक ही—माथ—केवल चातक के भाग्य में ही है, वही एक यशस्वी प्रेमी है ।

जामु—नाथ—जिसकी दीनता (दीन वाणी) किसी अन्य स्वामी ने नहीं सुनी; जिसने किसी अन्य स्वामी के आगे आर्त्तनाद करके अपनी प्यास नहीं बुझाई । जिसका स्वामी एकमात्र मेघ ही है, वही देगा तो लेगा अन्यथा प्यासा ही रहेगा ।

१३—पपीहे और मेघ की प्रीति वास्तव में (प्रकट में) नये ही (अपूर्व) प्रकार की है (अनूठी है, निराली है) । (संसार में ऐसा देखा जाता है कि) जाचक (भिखारी) जगत् का ऋणी होता है परन्तु (इन दोनों के प्रेम-व्यवहार में) जाचक (पपीहा) दानी (मेघ) को ऋणी (उपकृत) बना लेता है । फनौड़ो—ऋणी, कृतज्ञ, उपकृत ।

१४—नहिं नंप्रही—नंप्रह (इकट्ठा) भी नहीं करता । नहिं

जाचत-मँगता नहीं, केवल पिठ पिठ पुकारता है । सीस नाइ-सिर मुकाकर, सिर ऊपर को किये हुए ही ऊपर से गिरती हुई वूँद को पीता है, नीचे सिर मुका कर नीचे गिरी वूँद को ग्रहण नहीं करता ।

मानो-मान वाले, आत्मसम्मान वाले । मॉगनेहि-मँगता को ।
वारिद-घाटल, जल देने वाला ।

१५—ज्यायो-जिलाया, जीवित किया । जीवनदायक-पानी देने वाले, प्राणदाता । भयो जाचकहि-उलटा जाचक का ही उपकृत बना, उसका ही कृतज्ञ होना पड़ा । पयद-मेघ ।

१६—सॉसति-कष्ट सहता है । साधन-साधना करने में, प्रयत्न में । सुखद-सुख देने वाला । फल लाहु-फल का लाभ । चातक ' काहु-परन्तु चातक की-सी रीक (प्रेम में उल्लास) और जलद (मेघ) की सी वूम (सूम-वूम, बुद्धि) किसी-किसी ही बुध (बुद्धिमान्) को मिलती है । कष्ट सहते हुए भी चातक के प्रेम की अनन्यता और प्रसन्नचित्तता निराली है और दाता होते हुए भी कृतज्ञताप्रदर्शन मेघ की गुणज्ञता का परिचायक है ।

१७—जीवन दायकहि-जीवनदाता की (मेघ की) । सुरीति-शुद्धी रीति, सुन्दर ढंग । जीवन समय-जीवनकाल में ही । अलरप-जो देखा नहीं जाय, जो जाना नहीं जा सकता । प्रीति प्रतीति-प्रेम और विश्वास ।

१८—सय को हित मेह-मेघ सय का हितैपी है, हितकारी है । चातक मनेह-परन्तु मेघ के लिए सहज प्रेम तो एक चातक के ही हृदय में ममाया हुआ है । मेघ सय का प्रेमी है—

पर मेघ का प्रेमी तो एकमात्र पपीहा ही है ।

१६—विपुल—बहुत, अनेक । पोखरनि—कच्ची तलैयाँ के ।
भुवन दस चारि—चौदह भुवन । चातक नवल—नये (ताज़ा)
प्रेम वाला पपीहा । सुजस धवल—धवल कीर्ति से ।

२०—मानस मलिन—मन के मैले (कीड़े साँप आदि को
खाने के कारण) उनके मन मैले रहते हैं ।

पृष्ठ ७—

२१—वास—रहने का स्थान (मानमरोवर) । वेप—पंखादि रूप ।
चलनि—गति, चाल (हंस की चाल प्रसिद्ध है) । मानस—मन
(नीरसीर-घिवेकी) । मंजु—सुन्दर हैं । विसद—निर्मल, स्वच्छ ।

२२—पोद्दार जी ने इस दोहे का भावार्थ यह किया है—
“समार के लोग (विषयीजन) कहते हैं कि चातक पापी है,
पर्योकि मेघ ऊसर तक में घरसता है (परंतु चातक के मुँह में
नहीं घरसता) । पर मेघ इसमें यह शिक्षा देता है कि प्रेम की
परीक्षा कठोरता से नहीं करनी चाहिए (अर्थात् कठोरता में
प्रेम नहीं है, ऐसा नहीं मानना चाहिए, कहीं-कहीं कठोरता में
ही प्रेम का प्रकाश होता है । चातक पापी नहीं है, महान् प्रेमी
है; उसके प्रेम का यश मेघ की कठोरता से बढ़ता है) ।

परुषपन—कठोरता । सिखावन—शिक्षा । एह—यह । पातकी—
पापी ।

२३—मूढ़—मूर्ख । गति—दशा । समुक्ति—समझो । गूढ़—
गभीर, गहरा ।

२४—गरज—प्रयोजन, स्वार्थ । गरज करत—प्रार्थना करते
फिरते हैं । उर आनि—हृदय में स्वार्थ डालकर, धारण करके ।

जाचक भो-याचक बना । जानि सुदानि-अच्छा दानी
जानकर ।

२५—चरग-बाज़ पत्नी । चँगु गन (बाज़ की) चोंच में
पकड़े हुए । नेम 'पीड़-प्रेम के नियम का दुःख है, मरने का
नहीं । परवस 'नीर-(बाज़ से मारे जाने पर) मेरी
हड्डियाँ और पख विवश होकर पृथ्वी पर के जल में पड़ेंगे ।

२६—ब्रधयो-मार दिया । वविक-शिकारी ने । पुण्यजल-
गंगा के जल में । उलटि' चोंच-उलट कर अपनी चोंच को
ऊपर को उठा लिया । प्रेम-पट-प्रेम के वस्त्र पर । मरतहुँ-
मरते हुए भी । लगी न खोंच-फटा नहीं ।

२७—अह फोरि-अंडे को फोड़कर । चेटुआ-बच्चा ।
तुप-अण्डे का छिलका । चगुल-पजा ।
सावार्थ यह है कि चानक के प्रेम की अनन्यता को यह भी
सहनीय नहीं कि उसके बच्चे वाला अंडे का छिलका भी
पृथ्वी के नीचे में पड़े । अत उमे भी पंजे से पकड़ कर
(न कि चोंच से) बाहर निकाल फेंका ।

२८—तात-ऐ प्यारे बेटे । तर्पन-मेरे मरने पर मुझे दिया
जाने वाला जलादि अर्घ्य, जलाञ्जलि । वारिधर धार-मेघ
की जलधारा, मेघ से बरसते हुए पानी की धारा ।

२९—नारि-नाइ, गर्दन । अरधजल-अर्धजली-मरते हुए
थादमी को आधा गंगाजल में और आधा बाहर रखते हैं,
इसको 'अर्धजल-क्रिया' कहते हैं । इस अवस्था में जिसके
प्राण छूटते हैं, उसकी सहज मुक्ति हो जाती है—ऐसा शास्त्रों

में वर्णन है। (श्री पोद्दार)—न मांगेउ' जल-अर्थात् मुक्ति की भी उपेक्षा दिखला दी, इस तरह वह भी नहीं चाहिए।

३०—चारिउ मास-वर्षाऋतु के चारमास।

३१—जान्यों—मैंने यह समझा है। जोगवत-रक्षा करता है, जोग' मन-वह स्नेही (चातक) मेघ का मन रखता है। उसका मन रखने के लिए ही वह बारह मास चिछाता रहता है।

पृष्ठ ८—

३२—प्रेम-पिआस-प्रेम की ही प्यास। जान-जग-संसार जानता है।

३३—आलवाल मुकुनाहलनिहिय-(चातक के) हृदय रूपी मोतियों का धाँवला अथवा क्यारी अर्थात् हृदय रूपी बहुमूल्य क्यारी। स्नेह-तरु-प्रेमरूपी वृक्ष। हेतु-प्रेम।

भावार्थ—चातक के हृदय रूपी बहुमूल्य (मोतियों के) धाँवले में प्रेमवृक्ष की जड़ लगी है। भगवान् करे कि स्वाति नएत्र का जल उसके हृदयस्थित प्रेम के लिए अनुकूल हो जाय, अर्थात् भली भाँति सिंचित हो, वह फूले फले।

३४—उपनकाल-प्रीष्मऋतु। खिन-शीघ्र अथवा खिन्न, शिथिल। मगपंथी-मार्ग का पथिक, रास्ता चलने वाला। ऊख-गरम, तप्त। उष्णकाल-ऊख-प्रीष्मऋतु थी, चातक थक गया था, रास्ते में चला जा रहा था और शरीर तप्त हो रहा था। अन जल सींचे रख-क्योंकि वे वृक्ष अन्य जल से

(स्वाती नक्षत्र के जन्म में नहीं) सींचे हुए थे, अतः उसे वृष्टों से यातें करना भी अच्छा न लगा, उनके नीचे छाया में विश्राम करना तो दूर रहा ।

३५—छाया तें वरु घाम—(ऐसे वृत्त की) छाया से धूप अच्छी है । चातक बहुत हैं—चातक के से प्रेम का दम भरने वाले, यगुजाभक्त तो संसार में अनेक हैं । प्रवीन—चतुर, सच्चे प्रेमी ।

३६—एकअग्र नेह—जिस संसार में एकांगी प्रेम कहते हैं, वह वही प्रेम है जो रात-दिन चातक करता है । चातक का प्रेम ही एकांगी प्रेम कहा जा सकता है । एकांगी प्रेम उसे कहते हैं जिसमें प्रेमी यह नहीं देखता कि उसका प्रिय उससे थदले में प्रेम करता है कि नहीं । वह एकनिष्ठ प्रेम करता ही रहता है । वहि अहार—वह ही उसका आहार—खाना-पीना है अर्थात् वह खाना-पीना सब भूलकर प्रिय की स्मृति से ही जीता रहता है । वहि देह—वही (प्रिय ही) उसका शरीर होता है, अर्थात् अपने शरीर की सुधि भुलकर प्रिय के शरीर की ही सुधि में तल्लीन रहता है ।

३७—इस पद में धीणा की ध्वनि के साथ सपं के अनन्य प्रेम का चित्रण किया गया है । विवि रसना—दो जिह्वाएँ । चक चलनि—चाख टेढ़ी होती है । विष खानि—विष की खान है । जस अवननि सुन्यो—अपने यश को (धीणा की मधुर ध्वनि में) कानों से सुनते ही । सीस...आनि—आकर सिर अपंग कर देता है ।

३८—राग-त्रीणा का मधुर स्वर । व्याध को रूप धरि-
शिकारी का रूप घर कर । कुहौ—(कृहना मारना घातु) चाहे
मार देवे । कुरगहि—हरिण को । आयु...राग-गग (संगीत,
धीणा का मधुर स्वर) ही चाहे स्वयं व्याध का रूप घर कर
मृग को मार डाले । मन मुरे—मन मुदे, राग की ओर से हिरन
का मन हट जावे । प्रेम-पट—प्रेम बख पर । दाग—घब्या ।

३९—मनि-सर्प की मणि । निज दुति-अपनी छुति, प्रकाश
से । फनिहि *दिखाइ—चाहे साँप को शिकारी को दिखाता
देवे; मनि चाहे उसके पकड़े जाने का कारण बन जाय ।
विहुरत *आँधरो—क्या मणि के बिहुरते ही साँप अंधा
नहीं हो जाता अर्थात् मणि के वियोग को वह सहन कर ही
नहीं सकता । तार्ते—मणि से ।

४०—यहाँ कमल के प्रेम का उदाहरण है । बनज बन—कमल
बन को । जरत—जलते हुए । तुहिन—पाले से । रवि—सूर्य ।
दौ पीठि—पीठ दिखा कर, मुँह फेर कर । पराउ—भाग जाय ।
उदय विकस—सूर्य के उदय होने पर खिल उठना । अथवत
सकुच—घस्त होने पर कुम्हला जाना । सहज सुभाउ—कमल
का यह सहज स्वभाव ।

४१—देउ आपने हाथ—अपने हाथ से ही चाहे दे देवे ।
माहुर घोलि—विष घोळ कर । कवि खोरि—कवि को दोष देना ।

४२—उरग—साँप, पानी के साँप । कमठ—क्युआ । जल-
जीवन—जल-जन्तुओं का । जल गेह—जल ही घर है ।
साँचि लो—सच्चा ।

पृष्ठ ६—

४३—मरि मिटेहु—मर मिटने पर भी । मोरसिखा—मयूर-शिखा नाम की वनस्पति । त्रिनुमूरि—जड़ के बिना होते भी । पलुहत—पनप उठती है ।

४४—प्रीति-प्रीतम—प्रेम और प्रियतम । सुलभ—दोनों ही सस्ते हैं । मीन पुनीतते—पवित्र मछली से ।

४५—सव सवहितें होई—ये सब कृत्य सबके द्वारा ही जाते हैं, सभी कर लेते हैं । लहै बड़ाई—प्रशंसा पाता है । देवता . होइ—जब देवता इष्टदेव (प्रिय देवता उपास्यदेव) हो जाय ।

४६—कुटिन-हित—मित्र वही है जो दुर्दिन (आपत्काल) में प्रेम करे (A friend in need is a friend indeed) । ससि-द्यवि-हर—चन्द्रमा की कान्ति को हरने वाला । सदन—अपने घर में—अमावस्या को सूर्य और चन्द्र एक-साथ रहते हैं । मित्र—सूर्य को संस्कृत में मित्र भी कहते हैं ।

४७—कै—या । सम—बराबर वाले के (स्नेह) प्रेम से कष्ट ही होता है । ज्यों घृत होइ—जैसे घी और शहद बराबर मात्रा में मिलने से मदाविष बन जाता है ।

राम का विमान द्वारा त्रयोध्या-प्रस्थान

पृष्ठ १०—

उर रसि-हृदय में रखकर । हर्ष—विजय तथा राम जी के मीता जी तथा लक्ष्मण सहित घर को लौटने का हर्ष । विपाद—उनसे पृथक् ही जाने का दुःख । जूथप—यूथपति, सेनापति ।

नयननिमेप निवारि-श्रॉखों का रूपकना बंद करके, टकटकी लगाकर ।

रामतन-राम जी की ओर ।

मन महँ-मन-ही-मन ।

कोलाहल-शोर, जयकार की उच्च ध्वनि । श्री-समेत-सीता-सहित । तापर-उस पर । मेरुसृंग-सुमेरु पर्वत के शिखर पर । घन दामिनी-यिजली सहित मेघ । रुचिर-सुन्दर । अति आतुर-उत्सुकतापूर्वक, शीघ्रता से । त्रिविध वयारी-शीतल मंद सुगन्धित वायु । आसा-दिशाएँ । इहाँ-यहाँ । इन्द्र-जीता-इन्द्रजीत मेघनाद को । मारे-मारे हुए । भारे-भारी-भारी । हते-मारे थे ।

पृष्ठ ११—

सुखधाम-सुख के घर । सिव थापेउँ-शिवजी की स्थापना की थी । सपदि-नुरंत ही । कुंभजाटि-अगस्त्य आदि । अस्थाना-स्थानों, आश्रमों पर । सन-से । असीसा-आशीर्वाद । केर-का । चोखा-अच्छी तरह, शीघ्रता से । बहुरि-फिर । कलि-मलहरनि-कलियुग के पापों को दूर कर देने वाली । पुनीता-पवित्र । तीरथपति-तीर्थराज । निरखत-जिसके दर्शन से ही । अध-पाप । भागा-भाग जाते हैं, दूर हो जाते हैं । पावनो-पवित्र । वेनी-त्रिवेणी । हरनि सोक-शोकहारिणी । हरि...सेनि-श्रीहरि (विष्णु) के परमधाम पहुँचने की सीढ़ी के समान । त्रिविधताप-तीनों प्रकार के सन्तपों । भवरोगहर-सासारिक व्याधियों को नाश करने वाली ।

कृपाल-दयालु राम ने । सजल नयन-दर्शाश्रुपूरित नेत्र ।
वहुरि-पुन., फिर । मज्जनु-स्नान । कपिन्ह सहित-वानरों
सहित, वानरों को भी दान दिया । विविधविधि-अनेक
प्रकार से । बुम्फाई-समझा कर । बटुरूप-ब्रह्मचारी का रूप ।
समाचार लेई-ठनका समाचार लेकर ।

पृष्ठ १२—

गवनत भयऊ-चला गया । पहि-पासे । मुनिपूजा कीन्है-
मुनि न भगवान् राम की इष्ट बुद्धि से पूजा की । अस्तुति-
स्तुति । जुगल-दोनों । वहोरि-पुन, फिर । इहाँ-यहाँ पर ।
नाव नाव कहै-नाव कहाँ है, नाव कहाँ है, अथवा प्रत्येक
नाव पर से । नाँधि-जाँधि कर । आवा-आ गया । प्रभु आयसु
पावा-भगवान् की आज्ञा पा कर । सुरसरी-गंगा ।
चरनन्हि परी-गंगा जी के चरणों पर पड़ी, वंदना की ।
अहिवात-सौभाग्य, सुहाग । अभंगा-अखड रहे ।
गुहा-निपादराज गुह । परम-सुख-संकुल-परम आनन्द से
परिपूर्ण । अवनि-पृथ्वी पर । तन सुधि-शरीर की सुध-बुध ।
उर लाई-हृदय से लगा लिया ।

कृपानिधान-दयानिधि । सुजानराय-जानवानों में शिरामणि ।
रमापति-विष्णु, यहाँ राम । वैठारि-बैठा कर । परमसमीप-
धरत्यन्त पास । अब कुसल-अब इस समय कुशल है । पद-
पंकज-चरण-कमलों को । विलोकि-दर्शन करके । विरंचि-
प्रज्ञा । संकर-शिष्य । सेव्य-पूज्य, सेवा किये जाने योग्य ।
मुग्धाम-मुग्ध के गृह । पूरन काम-जिनकी सय इच्छाएँ

पूर्ण हैं। नमामि—नमस्कार करता हूँ। ते—तुम्हें, आपको। सत्र भांति अधम—जो सत्र प्रकार से नीच है। भरत ज्यों—भरत के समान। मतिमंद—मंद-बुद्धि। विसराइयो—भुला दिया। रावनारि—रावण के शत्रु का। पावन—पवित्र कर देने वाला। रति-प्रद—प्रीति देने वाला। कामादिहर—काम वासनाओं को हरने वाला। विग्यानकर—(भगवान् के स्वरूप का) विशेष ज्ञान देने वाला। मुदा—आनन्द-मग्न होकर, प्रसन्न होकर। जे सुजान—जो ज्ञानी, बुद्धिमान्। विभूति-पेश्वर्य। विवेक—सत् और असत्, भले और बुरे का भेद करने वाली शक्ति, बुद्धि। मलायतन—मल + आयतन—मलों, पापों का घर। नाहिँन—नहीं है। आन—अन्य, दूसरा। आधार—आधार, आश्रय।

कवितावली

१—अवधेस—अवध + ईश, महाराज दशरथ। सकारे—सबरे। गोद कै—गोदी में करके (लेकर)। लै निकसे—लेकर निकले। हौ—मैं। सोच-विमोचन—शोक से छुटकारा देने वाले। जे न...से—जो उन्हें देखकर मुग्ध नहीं हुए उन्हें धिक्कार है। मनरजन—मन को आनन्द देने वाले। रंजित अंजन—अंजन (सुरभि) का जल से रंगे हुए। सु-खंजन—जातक से—सुन्दर अंजन पक्षा के बच्चे के समान। समसील—एक

जैसे स्वभाव वाले, समान । उमै-दो । नवनील सरोरुह-नये
नीले कमल के समान प्रफुल्लित ।
ससि...कसे-मानों चन्द्र (मुख) में एक से स्वरूप वाले दो
नये नील कमल खिले हों ।

२—नूपुर-पायजेष । श्री-श्रीर । करकंजनि-कमलरूपी
दाथों में । मज्जु वनी-सुन्दर फय रही थी । मलकै-मलक
(चमक) रही थी । पुलकै-पुलाकत हो रहे थे । अरविद
सो-कमल के समान । रूप-मरद-रूप (सौन्दर्य) रूपी
मकरन्द । लोचनभृंग-नेत्र रूपी भौरे ।

३—आरि करै-हठ करते हैं । प्रतिविंव-अपनी परछाईं ।
करताल-ताली । मोद भरै-आनन्द मे भर देते हैं । रिसि-
आइ-रोप करके । जेहि लागि-जिसके लिए । अरै-हठ
करते हैं । विहरै-विहार करें, बसें ।

४—पनहीं-जूती । धनुहीं-सर-छोटा-सा घनुप और तीर ।
चौहट-चौमुहानी, चौराहा । हिये-(भक्तजनों के) हृदय
में । सो-के साथ, मे । कहा किये-बेकार है, निष्फल है ।
फल कौन लिए-जीने से क्या लाभ ।

५—यहाँ रामचन्द्रजी के शिव-घनुप तोड़ने का दृश्य अंकित है ।
दिगति-दगमगाने लगे । उर्वि- गुर्वि-अत्यन्त भारी पृथ्वी ।
सर्व पर्वत-सभी पर्वत । व्याल-साँप, शेषनाग । बधिर-
बधरा हो गया । दिग्गयंद-दिग्गज । टसकठ-रावण ।
परत मुक्कभर-मुँह के बल गिर पड़ा । हिमभानु-
चंद्रमा । सवांतत परस्पर-आपस में टकरा गये । विरचि-

प्रह्ला । कोल-सूअर । कमठ-कच्छप । अहि-सर्प, शेष ।
कलमल्यौ-कुलवृत्ताने लगे । चंड-प्रचण्ड, अत्यन्त कठोर ।
दल्यौ-तोड़ा ।

६—नगर-जनकपुरी में । निसान वर-श्रेष्ठ निशान बाजे ।
टुंढुभी-नगाड़ा । गान कै-कै-गान करती हुई, गाती हुई ।
राम-उर-राम के गले में । रुरे-रूप-राम (और सीता के
सुन्दर रूप में) । रचहीं-अनुरक्त होते हैं ।

पन जयो-प्रण, प्रतिज्ञा पूरी हुई । भावतो-मनचाहा, सभी
राम को ही विजयी देखना चाहते थे । मोद माचहीं-आनन्द-
मग्न हैं । साँवलो किसोर-साँवले किशोरावस्था के राम ।
गोरी-गौरवर्णवाली सीता जी । सोभा-तोरी-शोभा को
देख नृण तोड़ती हैं कि कहीं उनकी नज़र न लग जाय ।
जाँचहीं-याचना करती हैं, भगवान् से प्रार्थना करती हैं ।

७—परशुराम जी धनुर्भंग के पश्चात् आकर धनुष तोड़ने वाले
को देखना चाहते हैं । समस्त राजमंडल से वे कहते हैं ।

अर्भक-यच्चे । पटुधार-तेज़ धार वाला । कराल-भयंकर ।
कुठार-बुरकादा । जाको-जिसका अर्थात् मेरा । सोई हौं-
पदी में । वूभन-पूछता हूँ । हौं दलि-ताको-मैं उसके
एल को चूर्ण करूँगा ।

हवने में बधमण योल उठते हैं । तीसरी चौथा पंक्तियों में
परशुराम जी उन्हीं के बारे में पूछते हैं ।

लघु आनन-झोटा मुँद है । लरिहै-बढ़ेगा । करिहै ..

साको-घपना नाम करेगा, अर्थात् युद्ध में मुझे हरा कर यश पैदा करेगा ।

गरूर गुमान भरो-अभिमान से भरा हुआ । ढोटो-बालक । काको-किसका ।

८—काल के-राजाओं के लिए जो भयंकर काल (मृत्यु) हैं । फरसा-कुठार । विलोकि सप्रेम-पहले तो उन्हें अत्यन्त प्रेम से देखा । उनके सौन्दर्य पर मुग्ध-से हो गये । महारिसि तें-घोर क्रोध से । आँखि दिखाए-आँखें दिखाने लगे । सुहाए-अच्छे लगे । लायक हे-योग्य थे, यद्यपि पूर्ण से परशुराम समर्थ थे । सुभाय-सरल स्वभाव से ।

अयोध्याकांड

६—कीर-सूत्रा, तोता । कागर-पँख । ज्यों-जिस प्रकार सूत्रा यमंत में पुराने पंख त्याग कर नये पाता है । नृप चीर-राजसी घञ्ज ।

कीर * पाई-राजसी घञ्जाभूषण उतार कर राम जी के श्रंगों ने उस नवल शोभा को प्राप्त किया जो सुग्गा (यमंत में) अपने पुराने पंख त्याग कर नये पंख प्राप्त करके पाता है ।

सुवन्धु-श्रेष्ठ वन्धु, लक्ष्मण । पुनीत प्रिया-पवित्र घर्मपत्नी, सीता जी । मनो * सुहाई-प्रिय-वन्धु तो मानो घर्म का रूप था और पत्नी क्रिया, सुकर्म का । अर्थात् रामचन्द्र मानो घर्म और कर्म को साथ लिये जा रहे हैं । राजिवलोचन-कमलनेत्र । वटाऊ-बटोही, पथिक । नाई-समान । राम ने

पिता के राज्य को इस प्रकार निरपेक्ष होकर छोड़ दिया और वहाँ से वन को चल दिये, जैसे एक पथिक मार्ग में कुछ समय ठहर कर उस स्थान के सब साज-सामान को छोड़कर यिना किसी चिन्ता के आगे चल देता है ।

१०—यह पद राम-वन-गमन के समय कौशल्या जी को धैर्य बँधाने के लिए सुमित्रा जी द्वारा कहा गया है ।

कीजै कहा-क्या किया जाय । सहावै विधि-भाग्य जो सहन कराना चाहता है, जो भाग्य में लिखा है । रावरो-आपका । भरत... है—कैकेयी को क्या ऐसा करना चाहिए था । जाई-उत्पन्न हुई । राजपूत-राज्याधिकारी पुत्र । देह-चन्द्र का शरीर । सुधागेह-अमृत का घर, अमृतपूर्ण । वाहि... कियो-(विधाता ने) ऐसे सुधाघर चन्द्र को भी मृगांक से कलंकित किया । बाहु विनु-मुजाहीन । गहियतु है-पकड़ लेता है, प्रस लेता है ।

सारांश यह कि विधि की इच्छा को सहना ही पड़ता है ।

११—गंगा-तीर पर खड़े भगवान् राम से केवट का छाप्रहपूर्ण निवेदन ।

थोरिक-थोड़ी-सी । एहि-इस । कटिलों-कमर तक । परसै-स्पर्श करते ही । पगधूरि-चरण-रज । तरनी-नाव । तरै-तर जायगी अर्थात् अहल्या के समान स्त्रीरूप धरकर टढ़ जायगी । धरनी-स्त्री को । अवलंब-आधार, जीविका का साधन । जिआइहौं-पालूँ पोखूँ गा । वरु-चाहे, भले ही ।

१२—यह भी केवट का ही कथन है । रावरे-आपके । पाचन को दोष न-आपके चरणों का हममें कोई दोष नहीं । भूरि-

महा प्रभाट-बहुत ही अधिक प्रभाव है। वन-वाहन-जल का वाहन, नाव। लज रहा है-पानी ने इसे और भी कमजोर कर दिया है, पानी में रहने के कारण और भी कोमल हो गई है। पावन-पवित्र करने वाले। पखारि कै-धोकर। वर वैन-सुन्दर वचनों को। हँसे हहा है-ठहाका लगा कर हँसे।

१३—यह कथन भी केवट का ही है।

पात भरी-पत्तल भर कर सहरी (सक्करी, मछली) से गुजर करता हूँ। वारे-वारे-यालक, छोटे-छोटे। याही लागी-इसी पर निर्भर करता है। वित्तहीन-घनहीन, निर्धन। गौतम की घरनी-गौतम ऋषि की स्त्री, अहल्या। ज्यों-की तरह। निपाट-एक नीच जाति। हूँ कै-होकर। वाद-वाद-विवाद, झगड़ा। रावरी सौँ-आपकी शपथ।

१४—कण्ठ शृंगार दर्शनीय है। सीताजी जय वनवास के लिए गामचन्द्र सहित प्रस्थान करती हैं, उस समय का कारुणिक दृश्य तुलसीदास जी ने चित्रित किया है।

पुरतें-अयोध्या नगरी से। निकसी-निकलीं। धरि धीर-धैर्य धारण करके। दएँ दूँ-रास्ते पर दो-चार क्रदम चलीं, अर्थात् थोड़ी दूर तक गईं। भरि भाल-सारे माथे पर। कनी जल की-पसीने की बूँदें। वै-द्वय, दोनों। मधुराधरपुट-सुन्दर ओष्ठपुट। वृमति है-बूझती हैं रामजी से। अत्र केतिक-अभी कितनी दूर। कित है-कहाँ पर। तिय की-सीता जी की। आतुरता-ब्याकुलता, घबराहट, श्रमजात विकलता।

पियकी-रामजी कां । अतिचारु अँखियों- अत्यन्त सुन्दर
आँखें । चलीं जल च्यै-विवश आँसू बहाने लगीं । स्वयमेव
उन नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो गई ।

१५—वन में संयोग-शृंगार का अनूठा चित्र तुलसी की
लेखनी ने इस पद में उपस्थित किया है । सीताजी कृच्छ्र थक
गई हैं, लक्ष्मण जी जल को गये हैं । यही बहाना बना कर
वे विभ्राम करने की अपनी हृच्छ्रा को कितने शिष्ट और सुन्दर
रूप में पतिदेव के सामने रखती है । पतिदेव का हृदय द्रवित
हो जाता है और वे हृदय के पवित्र स्नेह को किम रीति से
प्रदर्शित करते हैं, यह दर्शनीय है ।

लरिका-लडका, अभी बालक ही हैं । परिखौ-प्रतीक्षा
कीजिए । घरीक-घड़ी भर के लिए । छाँह् ठाढे हौ-झाया
में ठहर कर । पमेउ-पमीना । ब्यारि करौ-हवा करूँगी ।
अरु-और । पाँय-आपके चरणों को । पखारिहौं-पोंछ दूँगी ।
भूभुरि डाढे-धूलि से जतपथ व तप्त । लक्ष्मण की प्रतीक्षा के
मिस पतिदेव की सेवा करने का सु-अवसर पाना चाहती हैं ।
स्वय थक गई हैं, इस भाव को किम प्रकार गुप्त रखा गया है ।
इस भाव को किस प्रकार सुन्दर और कलापूर्ण रीति से
छिपाया गया है । प्रिया स्वम जानिकै-प्रियतमा (सीता जी)
थक गई हैं, यह अनुभव करते हुए । विलंब लौं-देर तक ।
नाह को-नाथ (पतिदेव) का । नेह लख्यौं-स्नेह देखा,
अपने प्रति उनके प्रेम को अनुभव किया । पुलको तनु-शरीर
रोमाञ्चित हो गया । वारि वाढे-नेत्र प्रेमाधुओं से आश्रित
हो गये ।

१६—राम सीता और लक्ष्मण वन में चले जा रहे हैं। कोई ग्रामोण स्त्री उन्हें जाते देखकर प्रेम-विह्वल हो अन्य स्त्री से देखने के लिए कह रही है। तुलसी को राम-वन-गमन का यह दृश्य अत्यन्त प्रिय था और उन्होंने इसका वर्णन बार-बार किया है।

वनिता—स्त्री, सीता जी। बनी—शोभित है। मोहि—सी है—मेरे जैसी होकर, मेरे समान ध्यान लगा कर, एकाम्र होकर देखने से ही उन यात्रियों के अनुपम सौन्दर्य का अनुभव किया जा सकता है।

मग जोग न—मार्ग (पैदल) चलने योग्य नहीं। कोमल—क्योंकि अत्यन्त मृदुशरीर हैं। क्यों चलिहैं—कैसे चल सकेंगे ? सकु 'छुवै—इन चरण-कमलों को स्पर्श कर पृथ्वी भी संकोच कर रही है अपनी कठोरता के कारण। मोहन रूप-जिनका सौन्दर्य मुग्ध कर देने वाला है। अनूप—अनुपम, अद्वितीय।

१७—इस पद को भी १६वें पद के संग ही पढ़ा जाना चाहिए।

मलोने—सुन्दर, सत्वावयव। सुभाय—स्वाभाविक रूप में ही। मनो 'है—अपने मनोहर सौन्दर्य से काम को भी जीत लिया है। निपंग—तरकस। विधु-वैनी—विधु-वदनी, चन्द्रमुखी। रति को 'है—जिसने अपने सौन्दर्य का थोड़ा-सा अंश रति को भी दे दिया है। पायन ती—पाँव में तो। सकुचात हियौ है—मेरा हृदय संकोच करता है, दरता है।

१८—यह भी किसी ग्राम-पधूटी का ही कथन है। उसे वनवास

के कारण का पता हो गया है। मैं जानी-मैं ममकती हूँ। महा अजानी-अत्यन्त अज्ञानी, निर्बुद्धि है। पवि पाहन हूँ-वज्र और पत्थर से भी। पाहन पवि से पहजे होना चाहिए था। राजहु-राजा (दशरथ) ने भी। काज अकाज-कार्य-अकार्य, भला-बुरा। कह्यो... है-जिन्होंने अपनी स्त्री के कहने की ओर कान दिये अर्थात् उसका कहना मान लिया। विछुरे... है-बिछुड़ने पर प्रेमी लोग कैसे जीवित रहे। प्रीतम लोग-प्रेमी लोग। आँखिन जोग-ये तो आँखों में रखने योग्य हैं, हतने कोमल और प्यारे हैं। किमिकै-किस प्रकार।

१६—इस पद में ग्रामवधुएँ सीता जी से रामचन्द्र जी का परिचय पूछती हैं।

उर बाहु विसाल-जिनका वक्षस्थल चौड़ा और मुजाएँ लंबी हैं। तिरछी सी भौहें-तिरछी (वक्र) भवें हैं। तून-तूनीर, तरकस। सरासन-वनुप। सुठि सोहें-भली प्रकार से सुशोभित हैं। चितै... मोहें-देखते वो तुम्हारी ओर है परन्तु मन हमारा मोह लेते हैं; (इन दोनों पक्तियों में असंगति अलंकार है)। रावरे कोहें-आपके क्या लगते हैं।

२०—इस पद में जानकी जी के उत्तर का क्लारमक रंग देखिए।

वैन-वचन। सुधारस-साने-अमृत रस से सने हुए, अमृत-मय। सयानी हैं-ये चतुर स्त्री हैं। टै सैन-संवेन धरके, आँखें तिरछी करके, इशारे के द्वारा ही। वछू मुसुकाइ चली-

(समझा कर) कुछ मुस्कराती हुई आगे चल दीं। सबै-सभी स्त्रियाँ। अली-सखियाँ। लोचन-लाहु-लोचनों के लाम, राम और लक्ष्मण के दर्शन। भानु उदै-सूर्य के उदय होन पर। अनुराग-तडाग-प्रेम-सरोवर। मंजुल-सुन्दर। कंज-कली-कमल की कलियाँ। विगसी-खिल उठी हों।

२१-प्राम की स्त्रियाँ सौन्दर्य-मुग्ध हो प्रेम-विह्वल दशा में परस्पर कहती हैं। मधुर आकर्षण-जनित पभाव क्या-क्या करने के लिये तैयार कर देता है, इस पद से ज्ञात हो जाता है। सजनी-दे सखी। रजनी रहि हैं-रात को विश्राम करेंगे। कहि है जग पोच-ससार धुरा कहेगा। हमारे ऐसा करने पर यदि ससारी लोग हमें धुरा भी कहें तो 'न सोच कछू' कोई चिन्ता नहीं। फल' 'लहि हैं-क्योंकि हमारे नेत्र तो अपने होने के फल (लाभ) वो प्राप्त कर लेंगे। पाइ हैं-पायेंगे। बतियाँ-यातें जो ये तीनों रात को आपस में करेंगे। कल-मीठे वचन। अति प्रेम पलकें-अत्यन्त प्रेम के कारण उनकी पलकें लग गईं, मुग्ध हो गईं, बट हो गईं। पुत्कि है-श्रीर राम को हृदय में देखकर रोमांच हो आया।

२२-रामचन्द्र जी का शिकार खेलने का दृश्य इस पद में अंकित है। चारिक-चार एक, कुछ। चारु बनाई-सुन्दर ढंग से। पानि-हाथ में। मृगया-शिकार। अलौकिक-अद्भुत, दिव्य चौकि-चौक कर। चकें-चकित होते हैं। चितवत चित है-ध्यान लगाकर देखते हैं। न हगें-न हिलते हैं। न भगें-न भागते हैं। जिय जानि-दिल में यह समझ कर।

सिलीमुख-तीर । पच-पाँच (पंचशर = कामदेव) रति-
नायक-कामदेव ।

२३—इस पद में हास्य-रस के द्वारा रामपगधूलि की महिमा का सुन्दर वर्णन है । त्रिन्ध्य-त्रिभ्याचल । उदासी-ससार से उदासीन । दुखारे-दुःखी है । गौतमतिय-तरी-अहत्या का उद्धार हो गया । सुखारे-सुखी, प्रसन्न । सत्र सिला-पत्थर की सभी गिलाएँ । हूँ हूँ चन्द्रमुखी-तपस्त्रियों ने मानो ये वचन भगवान् राम से कहे—कि अथ सय शिलाएँ चाँद के समान मुखवाली सुन्दर स्त्रियाँ हो जायँगी । परसे-दूने से । पद** कंज-कोमल चरण-कमल । कीन्हीं भली-बहुत अच्छा किया । कानन-वन । पगु धारे-पैर डाला, पधारे । संकेत यह है कि अथ तो हम सयको एक-एक खाँ मिल जायगी ।

किष्किन्धाकांड

२४—मति-गति मंद भई-समुद्र-लघन में उनकी युद्धि एवं बल दोनों ही असमर्थ हो गये । पवन के पूत-इगुमान् जी । कूदिये-कूदने में । पलु गो-पल-भर न लगा, तत्काल फूट गये । साहसी हूँ-माहस करके । मकेलि आर्ड-मकेलि (खेल खेल में, अनायास ही) धा गये । महना-एकाएक । औरन को-दूसरों का, दर्शकों का । फलु-सुख गानन्द । गो-जाता रहा ।

रसातल** आचो-महावीर के इस प्रकार पर्यंत पर धा

कूदने से वह पृथ्वी में घँसा और नीचे से जल ऊपर निकल
 आया । कोल-सूअर, वराह । कलमल्यो-व्याकुल हो गया ।
 अहि-शेष । कमठ-कच्छप । बलु गो-यज्ञ क्षीण हो गया ।
 चारिहू चरण के-हनुमान् के चारों पैरों के । चपेट-चपत,
 आघात । चाँपे-दयाने से । चिपिटिगो-चपटा हो गया ।
 उचके-उचकने पर, ठछतने से । उचकिगो-ठचक गया,
 ठछत आया । अचलु-पर्वत । चारि अँगुल-चार उगली
 भर ।

सुन्दरकांड

२५—उस पद में लफा में हनुमान् जी की अग्नि से प्रज्वलित
 पूँछ का चित्रण है । एक ही उपमान के अनेक उपमेय दर्श-
 नीय हैं । सन्देश अलंकार का सुन्दर उदाहरण है ।

बालधी-पूँछ । ज्वाल-जाल-ज्वालाओं का समूह । लीलिवे-
 निगलने के लिए । काल-यमराज ने । रसना-निहा । व्योम-
 वीथिका-आकाश की गली, आकाश-गंगा में । भूरि-बहुत
 से । धूमकेतु-धूमकेतु तारे, पुच्छल तारे । वीररस-मानवी-
 कारण देखिए । उधारी हैं-निकात कर नंगी कर दी हैं ।
 सुरेस-चाप-इन्द्रधनुष । टामिनी-कलाप-पिजली का समूह ।
 धृसानुसरि-आग की नदी । जातुघान-राजस । प्रजारी है-
 जलापेगा ।

२६—बुबुक्-अग्नि की लपटें । बुबुकारी देत-बाहें मार कर

रोते हैं । निवेत-गृह, घर । तात-पिता । भामिनी-स्त्री ;
ढोटे-लड़के । छोहरा-छोकरा । भोरे-मोले-भाजे । छोरो-
छोड़ दो । छेरी-वकरी । सोवै सो-जो सो रहा हो उसे ।
जातुधानी-रावण की रानियाँ । पिय-द्वे पति, प्यारे ।
लागि रे-लगो, छेड़छाड़ करो ।

२०—दसकंध-रावण । धरो धरो-इसे पकड़ लो । धाए-
दौड़ पड़े । सूल-त्रिशूल । सेल-भाला, घड़ी । पास-पाश,
फाँस । परिघ-लोहे का डढा । सनीर भाजन-जल भरा
वर्तन । समिध-यज्ञ की लकड़ी । सौज-सामग्री (नगर की
सारी वस्तुएँ मानो यज्ञकुण्ड की समिधाएँ हैं) । लंक-लंका
नगर । पुंगीफल-सुपारी । जव-यव, जौ । धान-चावल
सुवा-लकड़ी का चमचा जिससे घृताहुति अग्नि में डाली
जाती है । लँगूल-पूँछ । बलमूल-बलवान् । प्रतिकूल-
शत्रु । हवि-हवन का चरु । हॉकि हॉकि-हुकार करता
हुआ । हुनै-हवन कर रहा है ।

इस पद में कवि ने यज्ञकुण्ड का सुन्दर सांगरूपक बँधा है ।
२८—गाज्यो-गरजा । गाज ज्यों-थिजली के समान । भाजे-
भागे । जातुधान-धारि-राक्षसों का समूह (धारि = संता, कुट्ट) ।
उलदै—उँटेलेने लगा । ज्यो न सावनो-जैसे कि सावन
(सावन का मेघ) भी नहीं करता । भहराने-शिथिल टाँकर
गिरने लगी । दहराने-कॉपने लगी । वात-वायु । भहराने-
भागने लगे । भट-चोढ़ा । परावनो परयो-भगदट मच
गई । टकनि-धकौं से । दकेलि-धकेलते हुए । पैलि-दल-

पूर्वक दूर हटाते हुए । सचिव-मन्त्री । ठेलि-धक्के से आगे फेंकते हुए । अनल-अग्नि । भयावनो-भयानक है । नाथ-बल-हे स्वामिन्, यहाँ थक काम नहीं देगा ।

२६—विकराल वेष-भयानक रूप । सिंहनाद-(हनुमान् की) सिंह की सी गर्जना । सविपाद-खिन्न, दुःखी होकर वेग-तेज़ी में । मारुत-वायु को ।

प्रताप-तेज में । मारतड-मार्तण्ड, सूर्य को । करालता-भयंकरता में । कालऊ-काल, यमराज को । बढ़ाई-बढ़प्पन में । वावनो-बाधनावतार भगवान् को भी । (इन सब का कर्ता कृपि है) । सयाने-बुद्धिमान् । अवै आवनो-अभी आने वाला है । साहव-स्वामी, मालिक । रोपे राम-राम के रूष्ट हो जाने पर, क्रुद्ध हो जाने पर । वामदेव-शिवजी । विपम-यडे भयकर । बली-योद्धा, वीर । वादि-व्यर्थ ।

३०-जाति हैं परानी-भागी जाती हैं । गति ..है-जिनकी चाल हाथी की सी प्रसिद्ध थी । क्योंहूँ लिहै-क्या किसी भी तरह कोई रक्षा कर सकता है ! मदोवै-मदोदरी । काहूँ-कानूँ न-कुछ भी ध्यान नहीं दिया । केतो-कितना । कालि-कल ही । वापुरो-बेचारा । घालि है-नष्ट-भ्रष्ट करेगा । बलाई-सकट, आपत् ।

३१—हार-यु देलघरघटी शब्द-वन । मोँ-मे । लख्यो विसेपि-विशेष रूप से विचारा । कुल के कुठार-कुल के लिए कुल्हाड़ा-स्वरूप, मघनाद । पूतऊ-पुत्र ही । अनरे-निकम्मे, बेकार या ऊधमी । साँपानि सो खेलें-साँपों से खेलवाह

करते हैं, भयंकर काम करते हैं अनिष्टकारी कार्य करना ।
 ऐसे ही, गले मेलै छुराधार सों-झुरे की धार पर अपना
 गला रख देते हैं, अहितकर काम करते हैं । त्रिगोवै-दशा
 बिगाड़ती है । दाढ़ीजार-बढ़ पुरुष जिसकी दाढ़ी जल गई
 हो, स्त्रियों की एक रोपभरी गाली—दाढ़ीजला ।

३२-धीय-ब्रेटी । वार-बाल, केश । बसन उधारे-बस खुल
 गये । धूमधुंध अंध-धूँ की धुंधकार से अन्धे हो गये ।
 वारे-वातक । वारि-वारि-पानी-पानी । घहरात-चिंघाड़ते
 हैं । ठेलि-पेलि-धकेलते गिराते हुए । रौद्र-पाँव से ससल
 कर । खौंदि-घायल कर । बिललात-बिलबिलाते हैं ।
 अति अकुलात-अत्यन्त व्याकुल होते हैं । तौंसियत-प्यास
 से मरे जा रहे हैं । भौंसियत-जल रहे हैं । भारही-लपट से ।
 ३३-इस पद में गोन्वामी जी ने एक अति सुन्दर रूपक
 बाँधा है ।

राजरोग-राजयक्ष्मा, क्षयरोग । विराट उर-विराट पुरुष के
 हृदय में । विकल-व्याकुल । सकल सुख-रॉक-सभी सुखों
 से रंक (दरिद्र), अत्यन्त दुखी । उपचार-इलाज, औषधि ।
 हारे-थक गये, निराश हो बैठे । विसोक-शोकरहित । ओत-
 आराम, चैन । मनाक-जेश मात्र, थोड़ा-सा । रजाय-घाजा ।
 रसायनी-रसायन बनाने वाला वैद्य । समीर-सूनु-पवनपुत्र,
 हनुमान । सोधि-शोधकर, शुद्ध करके । सरवाक-मिट्टी का
 कसोरा जिसमें रस शोषा जाता है । वुट-जदी । पुटपाक-
 मुँहबंद पात्र जिसमें रखकर औषध घाग में फूँकी जाती है ।

लकजातरूप-लंका का सोना । रतन-रत्नादि, मोती आदि ।
जतन जारि-यत्नपूर्वक जला कर । मृगाक-रस-विशेष,
स्वर्ण-भस्म ।

३४—सिद्धिपीठि-जहाँ पर मन्त्रसिद्धि की जाती है ।
जागो है मसान-मसान जगाया है, शव सिद्ध करना, अमा
वस्या या पूर्णिमा की रात को श्मशानभूमि में जाकर किसी
अधजले शव को आधा जल में और आधा बाहर रखकर
उसकी छाती पर बैठ कर साहसपूर्ण हो विघ्न-बाधाओं से
विचलित न होते हुए पुरश्चरण पूरा कर लेने के कार्य को शव-
साधना या श्मशान जगाना कहते हैं । महासाहस-मसान-
जगाने का महान् साहस । देवी-इष्टदेवी, साध्या । सिय-
मारिखी-सीता सदृशी, सीता जैसी देवी । अच्छ-धारि-
अक्षयकुमार की सेना को । गढ-लंकागढ़ । भानुकुल-भानु-
सूर्यकुल रघुवंश के सूर्य, श्री रामचन्द्र । प्रताप-भानु-भानु-
प्रताप रूपी सूर्य के सूर्य, हनुमान् । लोक कोकनद-ससार
रूपी कमल । कोक-कपि-चक्रवे रूपी यानरों की ।

लंका-काण्ड

३५—पाहन-पत्थर । भे-हो गये । वनवाहन-जल का
वाहन, नाव । वनरा-यानर-सेना । रढ़े-रटने लगे । सैल-
मिला-पत्थरों की शिलाएँ । सागर ज्यों-जैसे सागर (जल
में) । बलवारि वढ़े-वै बल रूपी जल से बढ़ने लग गये ।

करें • आयसु-राम की आज्ञा पूरी करते हैं । कौतुक ही-
खेल खेल में ही । चतुरग-गज, अश्व, रथ, पदाति ये सेना
के चार अंग होते हैं । चमू-सेना । दलिकै-संहार करके ।
राढ़-अघम, दुष्ट, कायर । हाड़ गढ़े-इड्डियाँ घड़ डालीं,
चूर-चूर कर दीं ।

३६—अगद-प्रतिज्ञा-वर्णन ।

रोप्यो-जमा कर रख दिया, स्थापित कर दिया ।
पैज कै-प्रतिज्ञा करके । विचारि-ध्यान करके । रघुवीर-
वल-रामचन्द्र जी की शक्ति । लागे-लगने, उठाने
लगने । भट सिमिटि-थोड़ा इकट्ठे होकर, समूह बाँध
कर । टसकतु है-खिसकता है । न नेकु-ज़रा-सा भी नहीं ।
धरनि-पृथ्वी । धरनिधर-पर्वत त्रिकूट । धसकत-पृथ्वी में
धँसने लगा । धराधर धीर-धैर्यवान् शेषनाग । बालि को-
बालि का पुत्र । दवक-दवाने से । दलकति-विहीन होती है,
कंपित हो जाती है । उछरि सिंधु-समुद्र उद्वलता है ।
मसकतु है-दधने से फट जाता है । घट्टा परो-गड्ढा पड़
गया था । मंदर को-मन्दराचल का । कमठ काम-(समुद्र
मन्थन के समय) कच्छप की कठोर पीठ पर मंदराचल को
रगड़ से जो गड्ढा पड़ गया था वही (इस समय) काम
आया (उसी के कारण कच्छप को इस महान् दोष के सह
बने में सहारा मिला । पै...तु है-परन्तु उसके कलेजे में
पादा होने लग गईं ।

३७—हनुमान् जी का युद्ध-कौशल-वर्णन ।

तीखे-तेज़, वेगवान् । तुरग-घोड़े । कुरंग-हरिण । गुमान-
गर्व । तनु ढीले-शिथिल शरीर । गज-से-हाथी के से ।
केहरि-सिंह । लौं-की भाँति । मूफटे-पटके-मूफट कर पटक
दिये । सजीले-खेल खेल में ही । भूमि परे-पृथ्वी पर पड़
गये । घूमि-घुम्कर घा कर । कराहत-पीड़ा से कराहते,
चिह्लाते हुए । हॉकि-लज्जकार कर । हने-मार डाले ।
हठीले-हठ, धैर्य वाले ।

३८—लक्ष्मण जी का युद्ध-कौशल-वर्णन है ।

सूर-योद्धा (रावण के) । सजोइल- (युद्ध) सामग्री से
सुजित । साजि-सजाकर । सुसेल-सुन्दर बर्षा व भाजा ।
वगमेल-याग मिला कर चकना, पंक्ति-युद्ध सवारों का घावा
करना । भरी-भरी हुई, पुष्ट । भले हैं-सुन्दर लगते हैं ।
जिन्हें धाए-जिनके दौड़ने पर । धुकै-धुक धुक करता है ।
धरनीधर-शेष । धौर-धकानि-धौल-घक्कों से । हले है-
हिल जाता है । रन-तीर्थनि-युद्ध रूप तीर्थस्थान में ।
लाखन-दानि ज्यां-जैसे लाखों रूपयों का दान देने वाला
दारिद्र-दरिद्रों को । दावि-दायकर । दले हैं-मार डाले ।

३९—दोनों सेनाओं के योद्धाओं का युद्धभूमि में चित्रण है ।
मदर-पर्वतों को । गहि-ठठा कर । उनए-ठमड़ आये हों ।
उत-उधर, रावण की सेना की ओर से । प्रचड मुँड-प्रचण्ड
योद्धाओं का समूह । मुके-थागे को लपके । सुरदावन-
सुरदमनकारी, देवताओं को वश में करने वाले रावण के ।
निरुधैत-विरुद्ध वाले, उपाधिधारी यशस्वी वीर । विरुधै-

भिड़ गये । मची उपरी उपरा-चढ़ा-ऊपरी, स्पद्धा-
प्रतिस्पद्धा ।

४०—हनुमान् जी का युद्ध-चित्रण है ।

कतहुँ-कहीं । उपारि-उखाड़ कर । पर सेन-शत्रु-सेना पर ।
वरक्खत-बरसाते हैं । मर्दि-मसज्जवा कर । करक्खत-
कर्पत, खींचते हैं । चरन-चोट-चरण-प्रहार । चटकन-
चकोट-हाथों से नोचना ।

वज्जत-बजती है, आवाज़ होती है । विकट-भयंकर ।
कटक-सेना, छावनी । विहरत-फाड़ ढाकते हैं । चारिद-
जिमि-बादल के समान । गज्जत-गरजता है । लपेटत-
लपेटता हुआ । अटल-स्थिर, अविचल । कौतुक-करत-
खेळ कर रहा है ।

४१—बीभत्स रस का उदाहरण ।

ओभारी-उदर, पेट की धैजी । सेल्ही-योगियों की माला,
गढा । खपर-खप्पर । कोरिकै-कुरेद कर । भुटुंग-मोटे
वाली, जटाधारी । भुंड-समूह । तीर-तीर-किनारे किनारे पर ।
समर-सरि-युद्ध की नदी । खोरिकै-स्नान करके । सोनित-
रुधिर । सानि-भिगो, भिगोकर । वहोरि-बार-बार । वैताल-
एक भूतयोनि । भूतनाथ-शिवजी । हेरि-हेरि-देख देखकर ।
हाथ कै-एक दूसरे के हाथ में हाथ मिला कर ।

४२—युद्ध-भूमि में रुधिर के छींटों से भरे हुए राम के शरीर
का चित्रण । रहे न सरौर-रावण के शरीर में ब रह सके ।
दढ़ावरि फूटि-इड्डियों को फोड़ कर याहर निकल गये ।

गनी-गुना, माना । जूटी-इकट्टी हो गई । सोनित जटे-
 लहू की वूँटों की छटा से जड़ित सुशोभित । मरकत-सैल-
 मरकत, नीलमणि के पर्वत पर । वीरवहूटी-बाल रग का
 वरसाती कीड़ा जिसे इन्द्रवधू भी कहते हैं । यह उत्प्रेक्षा
 श्रयन्त उपयुक्त है ।

गीतावली

पृष्ठ २७—

१—पौढिये-लेटिये । पालने-भूके में । कर-पद-मुख-चख-
 कमल-हाथ, पैर, मुँह, नेत्र रूपी कमलों को । लसत-सुशो-
 भित । लोचन-भँवर-अपने नेत्र रूपी भौरों को । भुलावों-
 मुलाऊँ । बाल मनि-तुम्हारी बालकेलि के आनन्द रूपी
 सुन्दर मणि के लिए । किलकनि-किलकारी (हँसी) रूपी
 खान को । तेड-उसे, उस मणि को । अनुराग-ताग-प्रेम रूपी
 घागे में । गुहिये कहँ-गुहने, पिरोने के लिए । मति-मृगनयनि-
 बुद्धि रूपी मृगनयनी । भनित-कहते हैं । भली भामिनी-उर-
 सुन्दर स्त्री के हृदय में । मो-उसे, उस माला को । फुलावों-
 प्रफुलित कराऊँ । तेहि मिलि-उसके साथ मिलकर ।

२—महज मुहाय-स्वभाव से ही सुन्दर । खंजन-पक्षी का
 नाम । सकुचत-सकुचा जाते हैं (अपने आपको भगवान् के
 नयनों के समान न समझे हुए) । सिमु-भूपण-बालकों के
 योग्य आभूषण । राजत-सुशोभित होते हैं । लनु लैन-

मानो भगवान् से शरीर की शोभा पाने के लिए आये हों ।
 मैन-कामदेव । रहि गयो-वहीं रह गया हो । लखि-बहु-
 उस घनेरी सुषमा की देखकर । मोद भरे-आनन्द भरे ।
 वदन-मुख । कल-मधुर । वैन-वचन । अनूप-अनुपम ।
 उर-ऐन-उर + अयन, हृदय-मन्दिर में ।

३-अवध-वीथिन-अयोध्या की गलियों में । अनुज-छोटे
 भाई । नवनील नीरद स्याम-नये नीले (जल से भरे हुए)
 मेष के समान राम । तरुण-नूतन । अरुन सरोजपद-
 बाज कमल रूपी चरणों में । वनी-शोभित होती है ।
 कनकमय-स्वर्णमय । पदत्रान-जूती । पीत-पट-पीताम्बर ।
 तून-तरकस । ललित कर-सुन्दर हाथों में । लोचन-फल-
 नेत्रों के होने के लाभ को प्राप्त करते हैं ।

४-राम परी-(अहल्या के सिर पर) जैसे ही राम के
 चरण-कमलों की रज पड़ी । ऋषितिय-ऋषि की पत्नी
 अहल्या ने । पाहन-तनु-पथर का शरीर । प्रवल-भारी ।
 पति-साप-जरी-अपने भारी पाप के कारण पति के असह्य
 और कठोर शाप रूप तीव्र आग की जलन में जलती हुई ।
 विबुध-वेलि-देवताओं की वेज, कल्पलता । कृपा-सुधा
 सिचि-कृपा रूपी अमृत से सींची जाकर । सुखफरनि-सुख
 रूपी फलों से । फरी-फलित हुई ।

वरी-वरण किया । निगम-अगम-मूर्ति-वह मूर्ति जो वेदों
 के लिए भी अगम्य है, जिसे वेद भी पूरी तरह नहीं वर्णन
 कर सके । महेस-मति-जुवती-शिवजी की बुद्धि रूपी युवती

ने । भई जानि नयनपथ-नेत्र-मार्ग (आँखों के सामने)
 आई जानकर । इकटकर्ते न टरी-एकटक देखने से विचलित
 न हुई । प्रेम-प्रमोदभरी-प्रेम और आनन्द से भरकर ।
 वरनति हृदय-मन ही मन बखान करती है । केहि-किस ।
 आरत-आर्त्त, दीन की । आरति-दु ख, आपत्ति ।

५—मिथिला में स्त्रियों द्वारा रामछवि-चित्रण ।

सुमुखि-सुन्दरी । चितलाइ-ध्यान लगाकर । चितौ-देखो ।
 रचिवे की रुचि-रचना करने की इच्छा करके । सुबिरचि-
 श्रेष्ठ ब्रह्मा ने । कितौ-कितना । अवलोकत-देखते ही । कह्यो
 न परत-कहा नहीं जा सकता । जितौ-जितना । साँवर रूप
 सुधा-श्यामल छवि रूपी श्रमृत । भरिवे कहँ-भरने के
 लिए । कल-कलस-सुन्दर कलश, सुपात्र । रितौ-(तुम)
 खाली कर दो । बोलिवे कारण-बुलाने के लिए ही । ठयो-
 रचा है, किया है । ठाट-समारोह । भजिहँ-तोड़ेंगे । भूरि-
 भाग-बढ़ा भारी भाग्य ।

६—राम जी का दुलहे के रूप में और जानकी जी का दुलहिन
 के रूप में सखी द्वारा चित्रण । दुलही-दुलहिन । वर-वरन-
 सुन्दर वर्ण, शोभा । हरन-मन-मनोहर । सुन्दरता ही री-
 नख से शिखा तक सौन्दर्य का निवाह हुआ है । सखि-अवली-
 सखी-समूह, सखियों का समाज । जीवन-जनम-लहु-
 जीने का और जन्म लेने का लाभ । लोचन-फल-नेत्रों का
 फल । इतनोइ-इतना ही । सही-ठीक ठीक, पूरा-पूरा ।
 सुग्गमा-सुरभि-शोभा रूपी सुरभि-गाय मे । सिगार छीर-

(सिंगार चाहिए) शृंगार रूपी दूध । अमियमय-अमृत-मय । कियोहै-तैयार किया है । मथि सँवारे-(उस दही को) मथ कर माखन रूपी सीता और राम को बनाया है । सकल * मही-समस्त संसार की शोभा मानो मठा (ढाछ) है । (सुन्दर उत्प्रेक्षा से युक्त रूपक बाँधा है) ।

जोरी-जोड़ी को । सुख-सोभा-(सुख पृथक् होना चाहिए) । देखकर सुख, आनन्द होता है । सोभा-शोभा का कथन नहीं हो सकता । अतुल सोभा-अद्वितीय शोभा । सिला-सीला, अन्न के जो कण खेत काट लेने के अनन्तर खेत में रह जाते हैं । लवनि-लौनी, अन्न का वह भाग जो खेत काटने वाले श्रमिकों को दिया जाता है । सिला * लही-रति और कामदेव ने तो सीला और लौनी ही पाई है अर्थात् बची-खुची, पड़ी हुई शोभा को ही पाया है ।

७-वन के लिए प्रस्थान करते हुए रामचन्द्र जी से माता कौशल्या का कथन है । रहि चलिए-रह जाह्ये, यहीं ठहर जाह्ये । तात रत-पिता के वचनों का पावन करने में इस प्रकार तपपर हो । जननि * लायक-तेरे लिए माता भी मान्या होनी चाहिए । वानि-आदत, स्वभाव । मरजाद-मर्यादा । राखहु * * की-कि 'भगवान् राम सज्जनों को सुख देने वाले हैं' अपनी इस मर्यादा की रक्षा करो, अर्थात् मेरे जैसी सस्वभाव बाली को सुख देकर यहीं रहो । यदि हमें सुख न दोगे तो मर्यादा टूट जायगी । सोक-कूप-शोक के कुँ में । पुर-समस्त अयोध्या-नगरी । परिहि-गिर जायगी । सुनि * * यक-यह

सदेश सुनकर कि राम चले गये हैं। दूसन-दोष। हे ब्रह्मा, विधाता। राम जायक-रामचरणों से वियो करने वाला। कछु सु पायक-मानों कुछ तो यह पाने का स्वभाव था, अर्थात् माता के करुण वचनों होना स्वाभाविक था। सुरकाज-आयक-कुछ यह भी (अश्रुप्रवाह का कारण) था कि यदि देवकार्य (महार) न किया तो पृथ्वी पर अवतार लेने (आने) मुझे लगेगा। अश्रुप्रवाह के ये दोनों कारण थे। आने का।

८—यह भी माता कौशल्या का ही कथन है। हों-रहिहों-मैं किस प्रकार घर पर रह सकूँगी (वन को चले जाओगे)। ललन-लला, लाल। इहि-इसी यातक। विनोद-याद-लीलाएँ, क्रीड़ाएँ। कलवचन वचन। हों अनुराग-मैं अनुरक्त, प्रेम में डूब जाते निमिष-निमेष, क्षण। वदन कमल-आप के मुख। वरप-चीते-(चौदह) वर्ष बीतने तक। वलि-मैं लेती हूँ। कहा लेखे-तो तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम का क्या हुआ, अर्थात् इसे प्रेम कैसे कहा जायगा। भावार्थ या तुम्हारे विद्योह में यदि मैं चौदह वर्ष तक जीती रह तो यह प्रीति किस काम की, इसे तो प्रीति कहना ही होगा। विकल-भ्याकुल। महतारी-माता को। गदग गला भर आया। नयन लल-आँसू यह निकले। आने के क्षिप, कि मैं शीघ्र लौट आऊँगा। फिरि फिरि

बारम्बार कहा ।

६—त्रिकल • त्रियोग-त्रियोग से न्याकुल । लोग-पुरतिय-
(लोग पृथक् होना चाहिए) लोग न्याकुल हैं और नगर की
स्त्रियों कहती हैं । अली-हे सखी । मनिगण-रत्न, राम
लेखन और सीता रूपी रत्न । कौच लागि-काच शीशे क
लिए, दशरथ वचन पावन कौच के दुवदों के समान मूल्य
हीन हैं । भली-अच्छा काम । कुल-कुवेलि-कुल के लिए
बुरी बेल । विपलता । दुख फली-जिसे दुःख रूपी विपैले
फल लगे हैं । वन-जोग-क्या वन के योग्य है ? विपम-
षिकट, भीषण । दलकि-तदक कर । दली-नष्ट हो गई ।
कुलिस दली-उस दिन तो वज्र की कठोरता भी तद-तद
करके टूट कर नष्ट हो गई, अर्थात् वज्र-हृदयों के हृदय भी
फट गये, वे भी पिघल कर रह गये ।

१०—जोरे-जोड़े हुए । सकुचनि-संकोचवग । प्रभु...तोरे-
भगवान् सयकी तिनका तोड़ कर (मध्यन्ध-विच्छेद करत
हुए) त्याग रहे हैं । तन-शरीर । प्रान ..छोरे-वीर के समान
प्राण रूपी वृषाण (तखवार) को निकाले हुए (जैसे वीर
कृपाण निकाले मरने के लिए तैयार हो जाते हैं, जैसे ही
लक्ष्मण प्राणों को बलिदान करने के लिए प्रस्तुत थे) । मातुनों-
माता सुमित्रा से । वनिहँ वात • औरे-और किसी भी टपाय से
यात नहीं देनेगी, मुग्धारी इच्छापूर्ति नहीं होगी । चरन गटि-
(माता सुमित्रा के) चरण पकड़ कर । जौर्ची-मौगी ।
वटु • रे-माता से अनेक प्रकार निरारे पाते हुए अन्त्य

विनय अथवा आभार प्रकट करते हुए । सुचि हूँ हौ—पवित्र हो जाओगे । सही—सच्चा । राम थोरे—राम की समीपता थोड़े पुण्यों का फल नहीं, अर्थात् बहुत प्रयत्न कार्य करने पर ही रामजी का साक्षिध्म मिल सकता है । चकितचित—चकित होने का कारण यह था कि जिस बात की आशा न थी वह अनायास मिल गई । उठयो भोरे—शिकारी के (भोरे) असावधान हो जाने पर जैसे पक्षी उड़ जाता है ।

११—मरकत—नीलमणि । कलधौत—सोना । वरन—वर्ण, रंग । मरकत वरन—ये नीलमणि और स्वर्ण के समान श्याम और गौर वर्ण के हैं । काम रन—करोड़ों कामदेवों की शोभा को भी हरने वाले हैं, मात करते हैं । कोऊ—कोई । सुभग—सुन्दर । सुठि सुन्दरि—अत्यन्त सुन्दर । सोभा लिए—सारी शोभा लूट ली है, अर्थात् सम्पूर्ण शोभा अब इन्हीं के पास है । चितके चोर—हृदय को हग्ने वाले, चितचोर । वय—आयु अवस्था । लोचन—जोऊ—आँख भर कर (वृत्त होकर) देख लो । दिन मनि—सूर्यकुल की मणि राम । अनुराग ताग पोऊ—(इन मणियों को) प्रेम के धागे में पिरो लो । यह धन—इस ध्यान को श्रेष्ठ धन जानकर । मानि सघन—भारी लाभ मान कर । कृपिन ज्यों—कंजूस की तरह । हिये— गोऊ—हृदय के घर में द्रिपा लो ।

१२—गेन—गृह, घर, आश्रय । निरखु नैन—आँखें भर कर देखो, एककर देख लो । हैन—नहीं है । ऋतुनाथ—यसत । मैत—मदन ।

सिंगार-सुखमा-सुप्रेम-शृंगार, सुपमा और सुन्दर प्रेम ।
 मिलि चले-मिळकर चले जा रहे हैं । जगत लैन-
 संसार का चित रूपी धन लेने के लिए, संसार के हृदयों
 को हरने के लिए । त्रयी-वशीकरण, आकर्षण और मोहिनी ।
 पठई है विधि-विधाता ने भेजी है । दैन-देने के लिए ।
 तरुतर-वृक्ष के नीचे । विलंबे-ठहर गये । किए...
 फै न-किसने (प्रभु को) प्रेम के कारण उपकृत नहीं बना
 लिया, अर्थात् भगवान् प्रत्येक व्यक्ति के प्रेम का उपकार
 मानते हैं ।

१३—जब भगवान् यहत दिनों तक लौट कर नहीं आये तो
 मार्ग के गाँवों की स्त्रियाँ, जिन्होंने उनका दर्शनामृत पान किया
 था, आपस में बातें करती हैं । एक सखी दूसरी से कहती है ।
 वटाऊ-पटोही, पथिक । पुनि न फिरे-फिर लौट कर नहीं
 आये । वारक काऊ-क्या एक बार फिर उन्हें देख सकेंगी ।
 फटि सुहाए-कटि में मुनियों के से वस्त्र और तरकस
 शोभायमान थे । प्रलंब-अर्धंत लंबी । जेहि जाए-जिन्होंने
 उन्हें जन्म दिया था । सरद्...वदन-शरद ऋतु के स्वच्छ
 घन्द्र के समान मुख वाले । मंजुल...लोचन-सुन्दर बाल
 कमल के समान नेत्रों वाले । मनमय मारग-मनोमय (मन के)
 मार्ग में । कोटि...मोचन-करोड़ों कामदेवों के गर्भ का पूर्ण
 करने वाले ।

१४—सलोने-लावण्य युत, सुन्दर । जानि...उपही-वे
 परदेसी जान-पहचान के बिना भी अपने आप से, अपने प्रिय-

जनों से, तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय लगते थे । सुधा विधि-विधाता ने इन्हें अमृत का और स्नेह का भी सार लेकर बनाया है । जैसे भावते-(मन को) जैसे प्यारे लगते हैं । वहुरि हुक-क्या कमी फिर भी देख लेंगी । कहत-यह कहते कहते । सिथिल-शिथिल हो गई, मुग्धावस्था में हो गई । प्रयास-परिश्रम । परी सही-(सही, सची) प्रेम में सही सिद्ध हो गई ।

१५—वर्षा-ऋतु में चित्रकूट की शोभा का चित्रण । गोस्वामी जी के प्रकृति-चित्रण का एक सुन्दर उदाहरण ।

मव दिन-सभी ऋतुओं में । नीको लागत-सुन्दर लगता है । वर्षा 'प्रवेस-वर्षा ऋतु के आने पर । विशेष अनु-रागत-विशेष रूप से मन लालायित होता है । सोभा पावत-ऐसी शोभा पाते हैं । जनु छावत-जैसे अच्छे राजा के देश और नगर में सुप्रसन्न प्रजागण सय तरह के सुखों का अनुभव करते हैं । जलद-मेघ । मृदु घोरत-मधुर गर्जना करते हुए । धातु रँगमगे-(गेरु आदि) धातुओं से कुछ कुछ रँगे हुए । सृंगनि-चित्रकूट पर्वत के शिखरों पर । आदि अभोज-आदि कमल, वह कमल जो विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ और जिससे ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए थे ।

संवित भृ गनि-देवता और मुनिजन रूपी भौरों से पूजित । सिखर-शिखर । परस-स्पर्श करती हुई । घनघटहि-घन घटा को । वगपॉति-यगुलों की पंक्ति । आदि वराह... धरनी-आदि वराह मानों सागर में विहार (क्रीड़ाविज्ञास)

करके दाँतों (दसन) पर पृथ्वी को धारण करके उससे बाहिर निकले हों, (पर्वत की उपमा वराह से, बगुलों की दाँतों से और मेघघटा की पृथ्वी से दी गई है)

जलयुत ••सिलनि—जल से गीली स्वच्छ शिलाओं में । भ्रुकत-
मलकते हैं । नभ••तरंग—आकाश और धन के प्रतिबिम्बों
की तरंगें । जगरचना विचित्र—नाना प्रकार की सृष्टि ।
विराट् अंग अंग—विराट् पुरुष के अंग-प्रत्यंग में । विलसति—
प्रकाशित, प्रतिभासित होती है । भारि भारि—उँचे स्थानों से
गिरते हुए । भटि••आछे—स्वच्छ जल भर भर कर । सुकृत-
सुख—सुकर्मों का सुख । लागे••पाछे—जैसे सकर्म और सुख
एकमात्र रामभक्ति के ही पीछे लगे हों—सभी सुख व सुकर्म
रामभक्ति का परिणाम हैं ।

१६—पद १६, १७ और १८ में कौशल्या का विरहवर्णन है ।
माई—हे सखि ! भोर—प्रभात । और सो—और ही प्रकार
का, पहले जैसा नहीं । गिरा—वाणी । पति-सदनिन—पति-
गृहों से । मोपै—मेरे पास । न आई—जैसे पहले प्रतिदिन आया
करती थीं । विहँसि—हँसकर । मनहु••विधाता—मानों
विधाता मेरे परम सुख को नहीं देख सका, सहन न कर
सका, अतः उस सुख से मुझे वंचित कर दिया । इस पद में
माता के विरहोन्माद का चित्रण है ।

१७—जननी—माता कौशल्या । वान-धनुर्द्वियों—राम लक्ष्मण
के छोटे-छोटे बान और धनुष । ललित—सुन्दर । प्रथम ज्यों—
पहले की तरह । सधारे—प्रातःकाल । जाइ जगावति—(नित्य

के अभ्यास के कारण, अथवा विरह की पराकाष्ठा से जनित विस्मृति के कारण राम जी को उनके प्रासाद में) जाकर जगाती है । बड़ी तार भइ-बहुत देरी हो गई है । पहुँ-के पास । बोलि-बुलाकर । बन्धु-अन्य भाइयों को । जैइय जो भावै-जो अच्छा लगे सो खाइये (प्रात का कलेवा) । कवहुँ समुझि-कभी (होश में आकर) समझ कर । रहि *लिखी-मी-घकित होकर चित्र-लिखी-सी रह जाती हैं, मूर्तिवत् स्थिर खड़ी हो जाती हैं । वह सिखि-सी-उस समय का वर्णन करने से तो प्रीति सीखी हुई सी ज्ञात होती है, प्रीति सीखने से नहीं होती, वह तो अपने आप स्वाभाविक होती है । सच्चे प्रेम का वर्णन हो ही नहीं सकता और विरह में तो विशेष करके ।

१८-न समुभावै-नहीं समझाता । मन परतीति न आवै-मेरे मन का विश्वास ही नहीं होता । दूमेरे पद में इसका कारण बताया है—लगयो ही सीता-राम, लक्ष्मण और सीता मेरे नेत्रों के आगे सदैव लगे रहते हैं, उनकी मूर्तियाँ आँखों के नामने से हटती ही नहीं । तदपि उरको-तो भा हृदय की जलन मिटती ही नहीं, उनके मेरे सामने रहते हुए भी विरह-दुःख बना रहता है—यह आश्चर्य की बात है । विपरीता-विरुद्ध, उलटा । दुख न देखे-रामचन्द्र जी के देखने पर (सामने होते हुए) दुःख नहीं रहना चाहिए था और न देखने पर मेरा शरीर नहीं रहना चाहिए । परन्तु न तो दुःख नष्ट होता है (अतः राम वास्तव में यहाँ हैं ही

नहीं) और चूँकि मेरा शरीर विद्यमान है अतः राम यहाँ होने चाहिएँ । यह विलक्षण द्विविधा है जिसमें कौशल्या का मन उलझा हुआ है । अतः वे कहती है—करत...लेखे—मेरे प्राण इसी द्विविधा की उलझन में पड़े होने के कारण शरीर मे कूच नहीं कर पाते । पीर—पीड़ा ।

१६—भरतजी माता कैकेयी से कहते हैं ।

तैं—तूने । क्यों—कैसे । कठोर...रह्यो रो—ये वचन कहते समय तुम्हारा कठोर हृदय भला कैसे बना रहा, फट क्यों नहीं गया । दिनकर-वंस—सूर्यवंश । जननी...लाई—और माता ! मेरी माता तुम बनी ? क्या कहूँ ? सच है विधाता ने किसे दोष नहीं लगाया ? अर्थात् सबके साथ कोई-न-कोई कलंक लगाते ही है, सो मेरे साथ तुम्हारा माता होना ही महादोष है अन्यथा और सब कुछ मेरे लिए श्रेष्ठ था । हौ...हूँ—कि मैं राजमाता होकर सुख पाऊँगी । छत्र—राज-छत्र । कुल...करैगो—कुल के लिए कलंक और पाप का मूल ऐसा मनोरथ तुम्हारे भिना और कौन कर सकता है । ऐहैं—लौट आयेगे । ईस...हरिहै—भगवान् मेरे अपयश को भी दूर कर देंगे । तू...भरिहै—पर तू कैसे अपना जीवन पूरा करेगी ।

२०—तातेँ—इस कारण । दूपन—दोष । प्रगट कियो हँ—उत्पन्न किया है । मोहू—मुझे । सुरजद—सुख देने वाला । सुधानिधि—अमृत की खान, चन्द्र । जरनि जोए—जिसके दर्शन से जलन मिट जाती है । विप...बधु—उममे भी विप और मदिरा का दण्ड करते हैं (मनुज-मयन में चन्द्र के साथ

ये भी उत्पन्न हुए थे) । राम सब* * माहीं—यदि राम अन्त-
र्यामी या सयके हृदय में रहने वाले न होते । तौ* * हीं—तो
तेरी इस करतूत को सुन कर मेरी प्रीति का विश्वास कैसे हो
सकता था । मंजुल * सुन्दर । सींचि-सनेह-स्नेह सिंचित ।
प्रेम पहिचानी—उनके प्रेम को पहचान कर ।

२१—जय भरत जी सयको सग लेकर राम की खोज में चित्र-
कूट को चल देते हैं, तो पिजरे में यद शुक से शारिका अपना
दुःख प्रकट करती हुई कहती है । गहवर हिये—व्याकुल हृदय
से, भरे दिल से । सारो—सारिका, मैना । वीर—भैया ।
जग अधियारो लागत—ससार अंधकारपूर्ण लगता है ।
चेरि—मन्थरा । अयानि—मूर्ख । नृप* * विचारो—राजा ने
भले-बुरे का विचार नहीं किया । सोचतु—सोचते हैं । विधि
उजारो—विधाता ने बसाकर किसे नहीं उजाड़ा । चलत—उनके
जाते समय । करुनाकर के—दयालु राम के । जब सँभारो—
जब उन्हें (जात समय) नगर और परिवार की सँभाल
की । 'सुने न वचन' का कारण 'नगर कोलाहल भारो' है ।
भावते—प्यारे भाई, शत्रुघ्न । हम* * हमारो—पल होत हुए
भी हम पिजरां में पड़े हुए तरस रहे हैं—यही हमारा हत-
भाग्य है । स्वग—शुक । अय—भाई । मोगी रहि—चुप हो
रहो । समुक्ति* * न्यारो—प्रेम-मार्ग को निराला ही समझ
कर । गए ते—जो उस समय सँग गये थे । प्रभुहि—राम को ।
करम-गुन-गारो—कर्मों के गुणों का भी क्षीण कर दिया ।
गारो—गारना, क्षीण करना । मरन सँवारो—महाराज न

मरना सुधार लिया। और... चारो-और सय लोग तो प्रेम की केवल चर्चा हो करते हैं, और चारा ही क्या है, और यस चलता ही नहीं।

२२-चित्रकूट की सभा में भरत नम्र निवेदन कर रहे हैं। जानत हौ-हे भगवान्, आप जानते हो। दीन-हित-आप दीनों के हित करने वाले हो। जन की-अपने इस दास की, मेरी। ए-ये सय श्रवधनिवासी। संतत-सदा। अति-ग्रहुत ही। अनन्य-आपके ही, और किसी के नहीं। आरति-दुःख। परिजन-आत्मीय, कुटुम्बी। मेरो... फन की-मेरा जीवन तो ऐसा ही जानिये जैसा कि उस सर्प का होता है जिस के फन की मणि खो गई हो। मोहि वन की-मुझे यन में रहने की। मोको-सोइ-मुझे तो जो भी दोष लगाया जाय, लग सकता है। उतपति-उत्पत्ति, जन्म। तन की-मेरे शरीर की। निजपन की-अपनी मर्यादा (प्रण) की, शरणागत प्रतिपालन करने की मर्यादा की।

२३-इस पद में माता कौशल्या राम के घोड़ों की विरहा-वस्था का चित्रण कर रही हैं। वे कहती हैं कि हम तां मग्न कर भी लेवें पर इन्हे कैसे समझाया जावे। यह पद अत्यन्त करणरसपूर्ण है।

इन्हहिं-इन घोड़ों का। युभावों-समझाऊँ। पति को हित-अपने स्वामी राम का प्रेम। हेरि उत-उम्मी और दन्तर। वार ते-शाल्यपन से ही। अंग लगाइ-शरीर में लगा रखा था अर्थात् गहरा प्रेम करते थे। चितवत चौंकि-चौंठ हर देखने

लगते हैं। सोचत आए-हृदय में राम की सुधि होते ही सोचने लग जाते हैं अथवा शोक में पड़ जाते हैं। जोरे-जोड़े (राम लक्ष्मण के दोनों)। विरह-बधिक-वियोग रूपी शिकारी। ऐसेहू-इस बुरी तरह से।

२४—यदि किसी को प्रिय की सामान्यरूप से लौटने की आशा न हो, तो वह उसकी अन्य प्यारी वस्तुओं की दुर्दशा यत्नाकर उनके लिए ही आने को कहजाता है। इस पद में कौशल्या माता राम के घोड़ों की विरह-व्यथा का यत्न कर उनके लिए ही आ जाने की प्रार्थना कर रही है। माता पथिक के द्वारा रामजी से उन्हीं की दशा का सदेश भेजती है। फिरि आवौ-लौट आओ। बहुरो-फिर, दोबारा। पोखि कर-पंकज-कर-कमलों से पोषण करके। क्यों जीवहिं-ये कैसे जियेंगे। निपट-बिरकुल। सार-सुघ। भाँवरे-दुबले। मनहु * मारे-मानों कमल हो जिन्हें पाता मार गया हो। अँदेसो-अँदेशा, चिन्त।

अरण्यकांड

पृष्ठ ३६—

२५—रावण द्वारा आहत जटायु जय रामचन्द्र के पहुँचने पर उन्हें सीता की सूचना देकर प्राण त्याग कर रहा है तो रामचन्द्र जी उसे गोदी में लेकर कह रहे हैं। करण रस में यह पद भग है। नयन * मलिल-नेत्र-कमलों के प्रेमाधुओं से।

अरघ जल-अर्घ्य-दान, जलाक्षति, तर्पण करना । खगपतिहिं-जटायु के । मिलहिं वन-इस वन में मिलने पर । मैं पितु जान्यो-मैंने पिता की मृत्यु को भी मुला दिया था (मानों जटायु पितृतुल्य मिल गये) । वड़ो-भान्यो-मेरे एक बड़े पक्ष को तोड़ दिया । तनु राखन-अपने शरीर की रक्षा के लिए, अर्थात् रामजी ने जटायु से कहा, 'यदि चाहो तो मैं तुम्हें जीवित रख सकता हूँ । परमधीर-अत्यन्त धैर्यवान्, जटायु । नहिं डोल्यो-अपने निश्चय से (राम के समक्ष उनके चरणों में प्राण देने से) विचलित नहीं हुआ । समय-इस समय, इस अवसर पर । लागि-के लिए । धोखो लैहौं-घोखा नहीं खाऊँगा, भरमावे में न आऊँगा । मरत-मरते समय । मुनि दुर्लभ-मुनियों को भी दुर्लभ है । तुमहिं-मेरे तुम्हें । पुनि पैहौं-फिर पाऊँगा ।

सुन्दरकाण्ड

पृष्ठ ४०—

२६—सीता जी हनुमान् जी से पूछ रही हैं ।

कपि-हे हनुमान् । नयन चकोर-नेत्र रूपी चकोरों को । राकाससि-पूष्पिमा का चन्द्र रूपी सुप्त । मधुप-भ्रमर । मराल-हंस । छवि-शोभा । तहे तहे-उड़ी-उड़ी, अर्थात् भ्रमर के रूप में मेरे नेत्र उनके सुप्त, नेत्र, पर और परत रूपों

कमलों में निवास करेंगे, हस के रूप में नाभि-सरोवर में विहार करेंगे, मोर और चातक के रूप में भगवान् के श्यामल शरीर व केशादि की ओर दौड़ेंगे ।

विरह* * * पलुहावर्हिगे—वियोगाग्नि से मैं जलता के समान जल रही हूँ, ऐसी मुझ को कृपादृष्टि रूपी जल से सींच कर कय जहजहाती हुई बनावेंगे ।

लोकपाल—दिकपाल । मनुज—मनुष्य । सब परे चदि—जिन्हें रावण ने चन्दी बना रखा है । मुकतावर्हिगे—खुदावेंगे । रैन-दिन—रात-दिन । मोहजनित—मोह से पैदा हुआ । भ्रम—भ्रान्ति (मारीच में स्वर्णमृग की भ्रान्ति) । भेदबुद्धि—भेदभाव (जैसे मैंने लक्ष्मण जी के प्रति दिखाई थी) ।

२७—सीता जी के पास से हनुमान जी की विदाई ।

चलत-प्रस्थान करते समय । मनु-मन, हृदय । गहवरि आश्रो-न्याकुल हो गया । पुलक-रोमांचित । चह्यो-चाहा । पिय* * * दुरायो-प्रियतम राम के हृदय की दशा (विरह-दुःख से पीड़ित) जान कर सदेश नहीं दिया और अपने अस्व दुःख को हृदय में ही छिपाये रखा । हरीस-हरीश, कपीश, हनुमान् । प्रीपम* * * तायो—जैसे प्रीप्स ऋतु में (तरनि) सूर्य की तेज़ धूप से तपार्हे हुई पृथ्वी पर चलता हुआ यात्री न्याकुल होता है । मीचते-मृत्यु से भी । नीच-हीन, पुरी । अमरता-अमर होना । छलको * पायो—वहाँ न तो छल न यत्न का स्थान (अस्तर) देखकर उन्हें अपना प्रेम (परुप) कठोर प्रतीत होने लगा ।

कै प्रबोध-समझा कर । मातु प्रीति सों-ब्रह्मसत्य-प्रेम ये ।
 है है... भायो-तुम्हारा ही मनचाहा होगा । करुना... गौन-
 हनुमान् जी ने करुणा, क्रोध, लज्जा और भय ये भरे हुए
 प्रस्थान किया । मौन ही-चुप रहकर बिना मुँह से कुछ कहे ।
 रसना रूखी-जिह्वा रूखी है । ताही... गायो-दूसी कारण
 वह उसका गान कर सकी (यदि हृदय के समान वह भी
 सरस होती तो वह भी वर्णन करने में असमर्थ हो जाती) ।

२८—भगवान् राम से हनुमान् जी द्वारा सीता जी का कुशल-
 समाचार देना ।

जौन-जो, जैसी । जानों... हों न-मैं कुछ कुछ जानता हूँ,
 परन्तु कह नहीं सकता । लोचन... कोन-आँखों के आँसू
 कंजूस के धन के समान कोनों में ही रहते हैं (अर्थात् नेत्र
 सदा दुःखाश्रुओं से परिपूर्ण रहते हैं) । 'हा' धुनि... मौन-
 मौन (चुप्पी) रूपी बड़े शिकारी ने 'हा' धुनि रूपी
 चिड़िया को लाजरूपी पिंजरे में बंद करके हृदय में ही रखा
 छोड़ा है । भावार्थ यह—कि सीता जी के मुख से 'हा' की
 धुनि भी नहीं निकलती, हृदय में ही रहती है, आँसू चुप
 रहती हैं । वसति-सीता रहती हैं । पुरातन भौन-अपने
 पुराने निवास । तजि... भजे-छोड़-छोड़-कर भाग गये हैं
 (सीता जी की विरह-ज्वालाओं से संतप्त होकर, यहाँ टहर नहीं
 सकते) ।

स्वास... पौन-सीता जी की साँसों (आँसू) की वायु से
 भूख में ही भेंट होने पर त्रिभिध पवन उम मार्ग पर पैर

नहीं धरता । (शीतल, मद, सुगन्ध वायु उस और नहीं जाता, भय है कि सीता जी की विरह-श्वासों की गर्मी से जल न जाय) । धरयो-धरा । मुख * गौन-सीता की दशा मुँह से कही जाने पर (वर्णित होने पर) तो अत्यन्त गौण (छोटी) हो जाती है (अर्थात् उसका वर्णन कठिन है; कहने से उसका महत्व कम पड़ जाता है) । आरत * दौन-आर्त्त-आत्ति-दमन, दुस्त्रियों के दुःख का दमन करने वाले हो ।

लंकाकाण्ड

पृष्ठ ४२—

२६—मेघनाद की शक्ति खाकर मूर्च्छित हुए लक्ष्मण जी को गोदी में लेकर श्रीराम के हृदय के उद्गार । उर लाय लए हैं—हृदय से लगा लिया है ।

राजीव-नयन-कमल-नेत्रों में । परिताप-संताप, दुःप । तए हैं—तप्त हैं । ससोक-शोक से भरकर । वचन * गुथए हैं—प्रीति में गुँथे हुए वचन कहते हैं । सेवक अथए हैं—तुम्हारे अस्त के साथ ही सेवक, मित्र, भक्ति और भ्रातृत्व के समस्त गुण अथ अस्त हुआ चाहते हैं, अर्थात् अथ ऐसे गुणों वाला अन्य कोई नहीं मिलेगा जिसमें ये सभी गुण एक साथ विद्यमान हों । अथए-अस्त । कीरति करतूति-कीर्ति और कर्मों से । मुकृती सकल-सत्कर्म करने वाले सभी को । जए हैं—जीत लिया । तनु रागि-शरीर को रचकर । लोकरू-दस लोक

में। अपने लए हैं—अपना अयश लिया है। लाज इहाँ लौं—लाज यहाँ तक कि। साँगि—शक्ति-शस्त्र। सीपर—ढाल। सुखाइ गए—सूख गए। पवनसुत विधि—हनुमान् रूपी विधाता। फिरि हैं—पुनः निर्माण किया है, फिर से नये प्राण भर दिये हैं (संजीवनी वृटी लाकर) ।

३०—वही—

विपति बँटावन—दुःख को बँटाने वाली। वन्धु-बाहु-लक्ष्मण की भुजाओं। काको—किमका। सोपर—विधाता—विधाता ने मुझसे मुँह फेर लिया है, विपरीत हो गया है। हौं तज्यो—मुझे त्याग दिया। सो—समान। जैहैं—चले जायँगे। साखासृग-यानर। हौं संघाती—मैं भी भाई लक्ष्मण का साथ दूँगा, मैं भी प्राण त्याग दूँगा। रही छाती—मेरा हृदय इसी मोच (चिन्ता) से भरा हुआ है। हिय-हारे—विथ्वित हो गये, दिल छोड़ बैठे। ओसर—अवसर। प्रचारे—उत्तेजित किया।

३१—लक्ष्मण जी को सुधि होने पर जय उन्में पृष्टा गया कि क्या अब भी घाव में दर्द हो रहा है तो वे उत्तर देते हैं। हृदय वीरै—मेरे हृदय में तो केवल घाव ही है, इसकी पीटा तो रामजी को होरही है। पाइ मजीवन—संजीवनी वृटी पाकर, या सेवन करके। जागि—होश में आकर। प्रेम शरीरै—प्रेम से पुलकित होकर शरीर की सुघ भूलकर। कीरै—तोते को। मोहि कीरै—जैसे तोते से कोई पदाये हुये पाट के प्रथं (पृष्टने) की बात करे जैसे तुम लोग मुझसे दार दार बना पृष्टते हो।

शोभा •• हीरै—हीरे की शोभा, उससे होने वाले सुख, लाभ व हानि तो (उसे धारण करने वाले) राजा को ही होती है (हीरे को नहीं), हीरे का सयंघ तो केवल उसकी कांति (चमक) तथा मूल्य से ही होता है। धरि धीरै—धैर्य (धैर्यवान्) भी धैर्य नहीं रख सका, अर्थात् मनुष्य तो क्या स्वयं धैर्य का भी धीरज नहीं रहा। क्यों नीरै—दूध और पानी से भी किस प्रकार दी जाय।

३२—अवधि पूरी होती देख माता राम की सकुशल यात्रा के लिए चैठी थैठी शकुन मना रही है। कौधों को उड़ा उड़ा कर शकुन देखती है। अस्यन्त स्वाभाविक चित्रण है।

गेहें—आयेंगे। कहहु फुरि वाता—सच सच कहो। दोनी—दोना भर भर कर। सोने मढ़ैहौं—सोने से चोंच मढ़ा दूँगी। उर लैहौं—हृदय से लगाऊँगी। गनक—ज्यौतिपी। वोलाड—उल्लावकर। मीन पायो—भरती हुई मछली को मानो जल मिल गया हो।

३३—इस पद में कैकेयी के प्रति भरत और रामजी के व्यवहार का चित्रण किया गया है। दोनों के व्यवहार में कितनी भिन्नता है। जौलौं—जय तक। तौलौं—तय तक। मुँह भरि—मुँह खोलकर, सीधे मुँह से। मानी तें—रामजी ने अपनी माता कौशल्या से भी कैकेयी को बढ़कर माना। जननि •• गही—(उनके इस व्यवहार पर) माता कौशल्या ने भी हृदय में गाँठ न रची, उन्होंने भी कोई मनमुटाव न रचा। राम-रूप •• निवही—रामचन्द्र जी के रूप (मन के भाव

और व्यवहार) को देख कर सय का निर्वाह हो गया । जेमे उनका व्यवहार था वैसे ही ये सय करते रहे । लोक चही (भरत जी ने) न तो लोकमर्यादा न वेदमर्यादा अथवा दोष व गुण की रीति की ओर कभी दिल ही लगाया और न ही आँखों (चक्ष) से देखा (चही) ध्यान ही नहीं दिया । भरत सही-ने राम-प्रेम को ही सुन-समझ कर सही (ठीक ठीक, त्रुटि-हीन) रखा, उसकी पूरी-पूरी रक्षा की—भरत ने तो रामचन्द्र के प्रति अपने प्रेम की ही भर-सक रक्षा की, यही भाव है ।

विनय-पत्रिका

पृष्ठ ४५—

१—वावरे-हे यावले । भव-नीरनिवि-संसार रूपी सागर । नाम-राम नाम । निज नाव-घपनी नौका है । रिद्धि-वैभव; सिद्धि-साधन, मफलता । साधि-सिद्ध कर ले, प्राप्त कर ले । प्रसे...रे-क्योंकि योग, संयम और समाधि लगाना आदि साधनों को कलियुग रूपी धीमारी ने प्रस रक्खा है । पोच-बुरा । दाहिनो-अनुकूल । वाम-प्रतिकूल । अंत-अन्त में, आश्रितकार । जग...फूलि-यह संसार उस वाटिका दग्गीची के समान है जो आकाश में फूल रही है अर्थात् उगी के समान गिध्या है ।

धुँएँ कैसे धौरहर-धुँएँ की ऊँची बुजों, अटारियों की भाँति
 क्षण क्षण में दिखने और मिटने वाले इस जगत् को ।
 परोसो ..कौर-वह उस मूर्ख के सदृश है जो सामने परोसे
 हुए भोजन को छोड़कर कौर कौर (ग्रास ग्रास) माँगता
 फिरता है ।

२—जौहे-देख । जग-जामिनी-ससार रूपी रात्रि को ।
 देह टामिनी-इस शरीर, घर और सांसारिक स्नेह को यादज
 में (क्षण भर के लिए चमकने वाली) विजली के समान ।
 जैसे-की तरह । सोवत-सोते हुए भी । ससृति-संताप-
 ससार के कष्टादि । बूड्यो 'साँप-तू ऐसे ही इस ससार
 में दूध रहा है—जैसे जल की भ्रान्ति में पड़ा हुआ हरिण,
 और तूरस्सी के माँप को खा रहा है (नितान्त भ्रम में
 पड़ा है) । वेद-बुध-वेद और बुद्धिमान् जोग । वृष्णि-समक
 ले । दोष जाहिं-स्वप्न में भासमान सभी दुःख और दोष
 जागने पर ही दूर होते हैं, जागने पर ही स्वप्न के नाश के
 साथ कष्ट और दुःख भी नाश होते हैं । ताया-तपाने वाले ।
 मुचि-शुद्ध । रुचि-प्रीति । सहज-बिना किसी कारण के
 होने वाली । सुभाय-स्वाभाविक ।

इस पद में सासारिकता को निद्रा और ज्ञान को जागरण
 माना है ।

३—मोहजनित-मोह से पैदा हुआ । मल-पाप, मैला ।
 लाग-लगा हुआ है । अभ्यास-निरत-पापों में लीन रहने
 का अभ्यासी है । अधिक लपटाई-दिन प्रति दिन, प्रत्येक

जन्म में (पापों में) और भी अधिक लिपटता रहता है । विषय...लागे-विषय-भोग में पड़ा हुआ । वासना-मान-मद-बुरी बुरी इच्छाओं, अहंकार और गर्व में लीन । जीव-जीवात्मा । सहज सुख-स्वाभाविक आनन्द रूपी आत्म-रूप । पर-अन्य के । लाग-लगा हुआ है । नाथ-चरण-स्वामी के (राम के) चरणों कां । विसराय-भूल जाने पर । सुद्धि-हेतु-इस मल (पाप) से शुद्ध होने के लिए ही । राम-चरण **पावै-पर राम-चरणों में प्रेम रूपी जल के बिना इस मल का समूल नाश नहीं होता ।

४—सुनु-सुन । मन मूढ़-मूर्ख मन । सिखावन-शिक्षा, सीख । समुक्त सवेरो-शीघ्र ही समझ ले । विद्युरे... बहुतेरो-शशि (जो भगवान् के मन से उत्पन्न हुआ "मनसा पै चन्द्रः") और रवि (सूर्य) (जो नेत्रों से पैदा हुआ है) अपने अपने स्थान (मन और नयन) से विद्युड़ने पर (रात दिन घूमते हुए) बहुत फट पा रहे हैं । तर्हे-वहाँ भी (आकाश में भी) बड़े भारी रातु रातु । पुनीता-प्रविग्रता । मुरसरिता-गंगा जी । तिहे पुर-त्रिलोकी में । घनेरो-यहुत, घना । तजे चरन-विष्णु भगवान् के चरणों की त्यागने के बाद । वहिवो **केरो-उसे दहते ही रहना पड़ता है, विधाम मिल ही नहीं पाता । श्रुति *निवेरो-इस सिद्धान्त का सन्देह घेदों ने दूर कर दिया है ।

५—या मनकी-इस (मेरे) मन की । परिहरि-त्यागकर । श्योसकन—सासारिक अभिभावकों (छपरा छोटे छोटे देवी-

देवताओं) से (प्यासनिवारण की) आशा रखता है । जानि मति घन की—उसे मेघ समझ लेता है । सीतलता—मेघ की ठंडक । वारि—जल । पुनि “लोचनकी—ठलटी (धुआ लगने से) नेत्रों की हानि (आँखों का फूट जाना) होती है । गच-कॉच—शीशे के पक्के फर्श में । सेन—बाज़ पक्षी । जड़—मूख । टूटत...आनन की—(उस छाया-शरीर को दूसरा पक्षी समझ कर) उस पर उतावला होकर टूट पड़ता है अपने मुँह की हानि (चोट, आघात) को भूल कर (शीशे पर झपटने से अपने ही मुँह को चोट लगती है) । जानत...जनकी—तुम अन्तर्यामी होते हुए मेरी दशा को जानते हो । निजपनकी—शरणागतप्रतिपालकत्व की प्रतिज्ञा की, प्रण की ।

६—अबलौं नसैहौं—अब तक तो (मेरी आयु) नष्ट हो गई, परन्तु अब इसे नष्ट नहीं करूँगा—अब इसका उपयोग करूँगा । भवनिसा सिरानी—समार रूपी रात यात गई है, (मेरी अज्ञान-रूपी रात समाप्त हो गई) । जागे—अब मैं जाग गया हूँ (मुझे ज्ञान हो गया) । फिर न डसैहौं—अब फिर विस्तर नहीं लगाऊँगा (अब फिर मोह-निद्रा में नहीं सोऊँगा) । नाम चिन्तामनि—रामनाम रूपी चिन्तामणि को । उर कर—इसे हृदय रूपी हाथ से अब छिनन न दूँगा, सदा राम नाम को हृदय में रखूँगा । स्याम कसौटी—भगवान् राम रूपी साक सुन्दर कसौटी (सोना परखने का काता चमकीला पत्थर) ।

चित्त ' 'कसैहौँ—चित्त रूपी सोने को कसता रहूँगा ताकि इसमें यदि कोई मल आ जाय तो पता लग जाय । परवस-विषय-वासनाओं के वश में । निज वस-अपने ही वस में, स्वतन्त्र (अस्मज्ञानी) न हँसैहौँ—अपनी हँसी नहीं होने दूँगा । पनकै—प्रण करके । मन मधुकर—मन रूपी भौरे को । वसैहौँ—बसाऊँगा ।

७—यह पद रहस्यवादी रचना है । समुक्ति · रहिये—मन ही मन समझकर रह जाना पड़ता है, इस समझने पर भी बखान नहीं कर सकता ।

सून्य भीति पर चित्र—यह सृष्टि रूपी चित्र शून्य रूपी भित्ति (दीवाल) पर है । यह अनन्त सृष्टि शून्य में ही स्थित है । रग नहीं—बिना किसी रग के ही ये चित्र बनाये गये हैं । तनु विनु ' 'चित रे—चित्रकार स्रष्टा (प्रत्या) निराकार है—यही अद्भुत लीला है । धोये मिटई न—(साधारणतया चित्र घोंने से मिट जाते हैं परन्तु) ये चित्र घोंने से भी नहीं मिटते । मरई भीति—(एक और विशेषता यह है कि चित्र को मरने का कोई भय नहीं, यह तो जड़ होता है पर) हम चित्र को मृत्यु का भय लगा रहता है (संसार के सभी प्राणी मृत्यु से भय खाते हैं) । दुख · हेरे—(साधारण चित्रों की कलात्मकता आनन्द देती है; उनसे दुःख नहीं होता पर) इसकी ओर देखने से ही दुःख होता है । रवि ' 'जाही—यह संसार सुगमरीचिषा का जल है जिसमें अत्यन्त भयानक एवं मगर (सृष्टु) रहता है जो मुखरहित (ददन्हीन) होने हुए भी

इन समस्त चर और अचर (जडजंगम) को ग्रस लेता है जो उस जल को पीने जाते हैं (जो कोई इस भ्रामक जल रूपी सुख को पाने का प्रयत्न करता है, मारा ही जाता है) ।

कोऊ * सत्य—कोई इस सृष्टि को सत्य कहते हैं (भौतिकवादी) ।
 भूठ कोऊ—कोई इसे मूठा (मिथ्या) कहता है (अध्यात्म-वादी) । जुगुल—दोनों, सत्य और मिथ्या । जुगुल * माने—कोई सत्य और असत्य (सत्य और मिथ्या से मिश्रित) इसको प्रबल मानते हैं । परिहरै—छोड़ देवे । तीनि भ्रम—सत्य, असत्य और सत्यासत्य समझने के तीनों भ्रम । सो पहिचानै—वही आत्म-ज्ञानी है ।

८—माधव—हे भगवान् धिष्णु । मोहफॉस—मोह का फदा ।
 बाहिर उपाय—स्नान-ध्यान पूजा-पाठ आदि बाह्य उपाय ।
 अन्यन्तर ग्रन्थि—भीतर की गाँठ (अज्ञान) । कराह—कड़ाहा ।
 अतरगत—उसके अन्दर । अनल—अग्नि । कल्प सत—सैकड़ों
 वर्षों तक । नास न पावै— (वह प्रतिधिम्य) नष्ट नहीं होगा
 (जब तक धृत और चन्द्र विद्यमान हैं । इसी तरह जब मोह
 माया रहेंगी, यह पुनर्जन्म की फॉसी भी रहेगी) । बस-
 बसता हुआ । तरु जैसे—वृक्ष को काट देने पर पत्ती नहीं मर
 सकता । विचारहीन साधन—विवेक रहित उपाय । पावन-
 पवित्र । पगारे—घोने से, स्नानादि करके । उरग—सर्प ।
 बलमीकि—बाँधा । विविध * मारे—अनेक प्रकार से कूटने पर
 भी । हरि गुरु करुणा—भगवान् और गुरु की कृपा ।
 विवेक—सत्-असत्-भेद-बुद्धि ।

- ६—गति-मुक्ति । कीजै-मैं करता हूँ । अर्थ-सांसारिक धम्तुएँ, पदार्थ । अनर्थरूप-अर्थहीन, असत्य हैं । यहि लागे-इन्हीं के लिए । परव-पहता हूँ । विषय अनुरागे-वासनाओं में आसक्त । भूतद्रोह-जीवों के प्रति वैर । मोहयस्य-अज्ञानवश होकर । हित-भला । मत्सर-ईर्ष्या । ग्यान-रिपु-ये सब ज्ञान के शत्रु हैं । रहनि-फँसा रहता हूँ ।

सकल जगव्यापी-सारे संसार में व्याप्त हैं-घट-घट-वासी हैं । वेधत "पापी-जैमे सारहीन (पोले) बाँस में चंदन की सुगन्धि नहीं ठहरती, वैसे ही सारहीन (धोये, तत्त्वज्ञान-हीन) मन में यह विचार नहीं आता । भव प्रसित-संसार रूपी साँप में दसा हुआ मैं । उरग-रिपुगामी-सर्प-शत्रु गरुड़ पर सवारी करने वाला हे विष्णु भगवान् ।

१०—सुभाउ-विषयासक्ति की घान । कोउ भल "जाई- 'कोई मुझे भला कहे' 'और कोई मुझे कुछ देवे' इस प्रकार की लालमा मेरे हृदय में जाती ही नहीं—धन-मान की इच्छा यनी रहती है । सूतहि-सोते हैं, 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागति योगिनः' । भग्न"विधिवस-दद्यपि मनुष्य भाग्य-पश भग्नाश है, उसके भाग्य में मनोरथ-पूर्ति दृष्टी ही नहीं और वह सुख चाहता है पर दुःख पाता है । चित्रकार "घनावै-टसकी दसा उस चित्रकार के समान है जो बिना हाथों के होते हुए भा चित्र बनाये बिना ही स्वार्थ (चित्रकारी की कला) की पूर्ति चाहता है । हृषीकेश-इन्द्रियों के स्वामी । सभय-पँदा हुए ।

११—जो लेखे—यदि संसार मिथ्या है तो इन तीनों तापों का अनुभव कैसे होता है। मृगवारी—मृगमरीचिका के समान यह ससार। भ्रम ते विसेखे—(यद्यपि यह संसार असत्य है) पर जब तक भ्रम है तब तक विशेष दुःख होंगे ही। वारिधि वूडत—(सुपने में भी) समुद्र में डूबते हुए। जब जागे—जब तक स्वयं न जागे, जब तक आत्म-ज्ञान (जागृति) न हो जाय। अनविचार—सदा—यह ससार अज्ञान के कारण ही रमणिक लगता है। व्यवहारी—व्यवहार करने वालों के लिए। सुखकारी—सुख देने वाला है। सब विधि—सब तरह से। जदपि जूठ—यद्यपि यह जूठा (मिथ्या है)। श्रुति गावे—वेद यह कहते हैं।

१२—आरत-पोसु—दीनों के पाबने-पोसनेवाले। वेप वचन विराग—मेरे भेष में और वचनों में तो वैराग्य है। मन कोसु—पर मन पापों और औगुणों का कोप है। पोली—थोपी। ठोसु—पक्के हैं। रोसु—रोष, क्रोध। चहत खरगोसु—(मेरा मन) यश का ऐसे ही इच्छुक है जैसे एक खरगोश गीदड़ की सेवा करके सिंह का यश चाहता हो। रसनहूँ—जिह्वा से। घोसु—घोषित करो, जपो।

दभट्ट कलि नाम—कलियुग में दभ (दोग) से भी लिया हुआ राम नाम। कुभज सोसु—अगस्त्य ऋषि के समान चिन्ता रूपी सागर को सुखा देता है।

१३—करनी अपार—करना अति कठिन है। सफरी—छोटी मदली। सरैरा—शकर। विलगावै—अलग कर सकता है।

पिपीलिका-चौटी । सकल दृश्य-सम्पूर्ण दृश्यमान संसार को । उदर मेलि-ठदर में रखकर (घल्ल में माया को समेट कर) । निद्रा तजि-निद्रा को छोड़कर । द्वैत-वियोगी-द्वैत-भाव से नितान्त मुक्त । तहँ नाहीं-योगी को इस दशा में । यहि दसाहीन-इस दशा को पाये धिना ।

१४—रति-अनुरक्ति, प्रेम । निसोति-धेमिलावट, शुद्ध, खालिस । भाव बढ़ाए-भाव, प्रेम को बढ़ाकर । खलाए-खाली, पिचके हुए । लोलुप-लालची । आसके-आशा के । नहिं-मुझमें नहीं ।

१५—कवहुँक...रहौंगो-मैं कथ इस प्रकार के आचरण से रह सकूँगा । गढ़ौंगो-प्रहण करूँगा । क्रम-वर्म । नेम-नियम । परुप-कठोर । तेहि पावक न दहौंगो-उन (वचनों की आग से न जलूँगा (कहने वाले पर क्रोध न करूँगा) । सम-सम बुद्धि । देह-जन्तित-शरीर से उत्पन्न । यहि...रहि-इस मार्ग पर चलकर ।

१६—अंगद्वान-साधन रहित । घर घरनि-घर घर में । जगदीश-जगत् के ईश (स्वामी) । खगराज तजि-गरद को छोड़कर, पैदल । दोस-कोस-दोषों के खज्ञाने को । तोसे-तेरे जैसा । माय जायो को-कम माता ने जाया है । प्रभुकी जनैगी-(उच्चार करने में) भगवान की देरी रूपी माता दोष और दुःखों को ही उत्पन्न करेगी ।

१७—तिनहि मिले-एन सद से मिलने पर । फिरै...फेरै-

यह मन तुम्हारे फेरने से ही फिरेगा (सत्य पर आ संकेगा) ।
 निलय-घर । टेरे-पुकार पुकार कर । हरि प्रेरें-हे भगवान्,
 क्या यह तुम्हारी प्रेरणा से ही है ? पियूप-अमृत । हिम-
 बरफ, शीतल । विन्दु वेरें-बेदे के बिना भी । वागुरौ-फंदा,
 जाल ।

१८—नीच-हे नीच । विगोयो-नष्ट कर दिया । वरन-
 चारों वर्ण । पैयत-मिलते हैं । सुनियत-सुनते हैं । निरवान-
 मोक्ष । विधान-रीतियाँ ।

१९—अवसर-समय (मानव देह और आयु) । ही ते-हृदय
 से । हम-हम-अहंकार । रीते-खाली, सब कुछ यहीं छोड़कर ।
 जागु जड़-हे जड़, मूर्ख, जाग, चेत जा । बुभै घी ते-
 विषय-वासना की अग्नि कभी बहुत घी ढालने से बुझेगी ?

२०—ऐसी-रीति-प्रौर कौन-से स्वामी की ऐसी रीति हैं ।
 विरद हेतु-केवल विरुद (प्रशंसा) के लिए । कालकूट-विष ।
 मातु की गति-माता का पद (स्तनपान करके) अथवा
 उद्धार करके । जिन्हके-जिन गोपियों के । वानि-स्वभाव ।
 सुकृत-पुण्य । अघ-पाप । पातरूप-पापमूर्त्तों ।

२१—आपनो * जानिहौ-क्या कभी अपना भी मुझे
 समझोगे ?

विरद-लाज-शरणागत प्रतिपादक की लाज । प्रनत-प्रेम-
 शरणागत का प्रेम । दिन-दानि-दीनों की देने वाले । कहि
 आवत-रुहना ही पड़ता है । लौकिक कानि-लोकलाज, कि
 ऐसे पापों को भी अपना लिया । भानि-तोड़ने वाले ।

२२—विगोयो-बिगाड़ा, नाश किया । जनमि जनमि-धनेक
जन्म लेकर । सहज सुख-स्वाभाविक शानन्द (ब्रह्मानन्द) ।
निकटाहि रहत-अत्यन्त समीप, शरीर के भीतर ही (आत्मा
में ही) रहता है । दूरि जन खोयो-दूर समझ कर खो दिया ।
वारि चिलोयो-पानी को चिलोता रहा ।

करम-कीच जिय जानि-दिल में यह जानने हुए भी कि कर्म
कीचड़ के समान है । सानि चित-अपने चित्त को उसी में
लिस कर ।

मलाहि मल धोयो-कीचट से ही कीचड़ घोना ।
अकास निचोयो-शून्य को निचोड़ना चाहता है । गोयो-
छिपाया । डामत ही-बिड़ोना बिड़ाने बिड़ाने ही (सुखनिद्रा
क लिए साधन बनाते बनाते) । निमा-रात, जीवन ।

मानस-रूपक

यह शंक रामचरितमानस से उद्धरित है । हममें तुलसी ने
रामचरितमानस का मानसरोवर के साथ मफल रूपक
बोधा है ।

तुलसी-बिभ्रमित हुई । अनुहारी-अनुसार । सुमति-
सात्त्विकी बुद्धि । अगाधू-गहरा । धल-स्थान । नगुन-
साधार भगवान् । मलहानी-नाश-नाश । पेन-प्रेम । नानि-
धान । सुदृन-सुबर्न । हित-हितकर । नेधा नहिगत-बुद्धि
रूपी शृंगी पर गिरा हुआ । सक्ति-समिद्धकर । नवन नग-

कानों के रास्ते । सुमानस सुथल-सुन्दर
 रूपी स्थान में । थिराना-स्थिर हो गया
 नया जल पृथ्वी पर गिरने से कुछ मवि
 धीरे धीरे पुराना होकर साफ स्वच्छ हो
 सुख देने वाला । विचारि-विचार फर ।
 सुन्दर । चारि-चारों । संवाद-रामच
 चार वक्ताओं द्वारा चार श्रोताओं के प्रति
 से पार्वती के प्रति, याज्ञवल्क्य से भर
 मुशुंटी से गरुड के प्रति और तुलसी सं
 सप्तप्रबंध-सात काण्ड जिनमें यह क्य
 है । सोपाना-सीढ़ियाँ । ग्यान-ज्ञान,
 मनमाना-मन को भाती है । अर्
 निर्याघ, एकरस । वरनव-वर्णन कर
 लहरों का विज्ञास । कमलकुल-
 पुष्परज । मकरंद-पुष्परस । सुट
 पुंज-सकमों का ढेर । धुनि-ध्व
 वक्रोक्ति । कवितगुन-काव्य के गु
 जाती-स्वभावोक्ति । अरथ ८
 ये चारों पदार्थ । जलचर-ज
 नाम की महिमा का गान करने

अँरार्इ-अमराई, शाम के ।
 निग्रह । लता त्रिताना-ल
 अस्तेय, प्रत्यर्च्य और अर्प

स्वाशय और ईश्वर-प्रणिधान । हरिपद-भगवान् के
 चरण । रस-परम आनन्द । पुलक-रोमाञ्ज, कथा के
 अक्षय और अनुशीलन से जनित आनन्दमय रोमांच ।
 विहार-विहार, घूमना-फिरना । माली सुमन-शुद्ध मन ही
 माली है । चारु-सुन्दर । सँभारे-मावधानी से । तेइ-वही ।
 घक-बगुले । संवुक-घोघा । भेक-मेंदक । सेवार-शैवाल ।
 घलाक-बगुले । तिन्हके-उनके, दुष्टजनों के । व्याला-सर्प ।
 सवल-यात्रा में साथ लेजाई गई भोजन-सामग्री, पायेय ।
 जुडाई-जूड़ी, शीतज्वर । जाड़ विपम-कड़ी ठडक, शीत ।
 गएहुँ-वहाँ जाने पर भी । मज्जनु-स्नान । त्रय-ताप-आध्या-
 तिमिक, आधिदैविक और आधिभौतिक कष्ट । जरई-जलता ।
 भाऊ-भाव, प्रेम । काऊ-कभी । चह-चाहे, चाहता है ।
 अम मानस-इस मानस (रामचरितमानस) को । मानस-
 चर-मन के नेत्रों से । चाही-देखकर । अवगाही-गोवा
 लगा कर । भरिता-भरी हुई । लोकवेद-कृला-लोकमत
 और वेदमत इसके दो किनारे हैं । सुमानस नन्दिनि-मानस
 सरोवर की पुत्री, परयू नदी । कलिमलत्रिन-कलि के पापरूपी
 तिनके । तरुमूलनिन्दिनि-वृक्षों को जड़ से उखाड़ देने वाली
 है । त्रिविध-तीनों प्रकार के । दुहुँ कृल-दोनों तीरों पर यम
 (नगर) । अयध-अशोष्य । सुरसरितहि-गंगा । सानुज-
 लक्ष्मण । देवधुनि-गंगा । सुदिरति-वैराग्य सहित ।
 प्रासक-दराने वाला । निनुहानी-शान सुखवादी । मनुहानी-
 सामने बली । भँवर-नदी के भँवर । दनज-बमल ।

कानों के रास्ते । सुमानस सुथल-सुन्दर मानस (हृदय)
रूपी स्थान में । थिराना-स्थिर हो गया । चिराना-पुराना,
नया जल पृथ्वी पर गिरने से कुछ मज्जिन हो जाता है, वही
धीरे धीरे पुराना होकर साफ़ स्वच्छ हो जाता है । सुखद-
सुख देने वाला । विचारि-विचार कर । एहि-इस । सुभग-
सुन्दर । चारि-चारों । संवाद-रामचरितमानस की कथा
चार वक्ताओं द्वारा चार श्रोताओं के प्रति कही गई है—शिव
से पार्वती के प्रति, याज्ञवल्क्य से भरद्वाज के प्रति, काक-
भुशु ढी से गरुड के प्रति और तुलसी से उनके मन के प्रति ॥
सप्तप्रबंध-सात काण्ड जिनमें यह कथा विभाजित की गई
है । सोपाना-सीढ़ियाँ । ग्यान-ज्ञान, बोध, ज्ञानरूपी नेत्र ।
मनमाना-मन को भाती है । अगुन-निर्गुण । अवाधा-
निर्याघ, एकरस । वरनव-वर्णन करना हो । वीचिविलास-
लहरों का विवास । कमलकुल-कमल-समूह । पराग-
पुष्परज । मकरद-पुष्परस । सुवासा-सुगन्धित । सुकृत-
पुंज-सत्कर्मों का ढेर । धुनि-ध्वनि, व्यंग्यार्थ । अचरेव-
वक्रोक्ति । कवितगुन-कान्य के गुण (माधुर्य, शोज, प्रसाद) ।
जाती-स्वभावोक्ति । अरथ चारी-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,
ये चारों पदार्थ । जलचर-जलजन्तु । नामगुनगाना-राम
नाम की महिमा का गान करने वाले ।

अँवराई-अमराई, ग्राम के वृक्षों का समूह । दम-इन्द्रिय-
निग्रह । लता विताना-लता-मंडप । जम-सत्य, अहिंसा,
अस्तेय, यज्ञचर्य और अपरिग्रह । नियम-शौच, सन्तोष, तप,

स्वाभाव्य और ईश्वर-प्रणिधान । हरिपद-भगवान् के
 चरण । रस-परम आनन्द । पुलक-रोमाञ्च, कपा के
 ध्वज और अनुशीलन से जनित आनन्दमय रोमांच ।
 विहार-विहार, घूमना-फिरना । माली सुमन-शुद्ध मन ही
 माली है । चारु-सुन्दर । सँभारे-सावधानी से । तेइ-वही ।
 घक-बगुले । संयुक्त-घोषा । भेक-मेदक । सेवार-शैवाल ।
 घलाक-पगुले । तिन्हके-उनके, दुष्टजनों के । व्याला-साँप ।
 सवल-यात्रा में साथ लेजाई गई भोजन-सामग्री, पायेय ।
 जुडाई-जूषी, शीतज्वर । जाड़ विषम-कड़ी ठडक, शीत ।
 गण्डु-चढ़ी जाने पर भी । मज्जनु-स्नान । त्रय-ताप-प्राप्या-
 रिमक, प्राधिदैविक और प्राधिभौतिक कष्ट । जरई-जलता ।
 भाऊ-भाव, प्रेम । काऊ-कभी । चह-चाहे, चाहता है ।
 अस मानस-इस मानस (रामचरितमानस) को । मानस-
 चर-मन के नेत्रों से । चाही-देखकर । अवगाही-गोता
 लगा कर । भरिता-भरी हुई । लोकवेद-कृला-लोकमत
 और वेदमत हमके दो किनारे हैं । सुमानस नन्दिनि-मानस
 सरोवर की पुत्री, सरयू नदी । कलिमलत्रिन-कलि के पापरूपी
 तिनके । तरमूलनि-दिनि-दूरों को जड़ से उखाड़ देने वाली
 है । त्रिविध-शोभो प्रकार के । दुष्टे कूल-दोनों तीरों पर दमे
 (नगर) । ध्वज-ध्वजोप्या । सुरसरितदि-गंगा । सानुज-
 उपमण । देवधुनि-गंगा । सुदिरति-वैराग्य सहित ।
 प्रानक-दराने पाली । तिसुहानी-तान सुखगार्ही । मनुहानी-
 मानने पछी । भँवर-नदी के भँवर । घनज-घनट ।

धारिविहंग-जल के पक्षी । पटु-चतुराई पूर्ण । सत्रिवेका-
त्रिवेक-ज्ञान से भरे हुए । अनुकथन-सुनने के बाद की गई
चर्चा, यातचीत । सरि-नदी । भृगुनाथ-परशुरामजी ।
रिसानी-क्रोध । सुबद्ध-शुद्धी तरह से बँधे हुए । उमग-
सुखद-सुख देने वाली बात । परव जोग-पर्व के समय ।
जासु फल-जिसके कारण, फलस्वरूप । समन-शमन, शान्त
करने वाला । उतपात-उपद्रवों को । जलमल-कीचड़ ।
रूरी-सुन्दर । टिमसैलसुता-पार्वती, हिमालय की पुत्री ।
उद्धाहू-उत्सव । रितुराजू-व्रमन्त । पंथकथा-राम के वन-
मार्ग की कथा । खर-तज्ञ । रारी-युद्ध । पाथा-जल ।
भायप-भ्रातृत्व । लघुता-हल्कापन । सोपक-सुखाने वाला ।
तोपक तोपा-सन्तोष को भी सत्पुष्ट करने वाला । दुरित-
पाप । मानस-हृदय, मन । विगोए-विगाड़े गये, नाश
किये गये । रवि-वारी-मृगमरीचिका । गनि-जानकर,
समझकर ।

